आई एस एस एन : 0972-169X
पंजीयन क्रमांक 70269/98 के अंतर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत
डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल : 11360/2004

ड्रीम 2047

मार्च 2004 | खण्ड 6 | अंक 6 | मूल्य रुपए : 5.00

विज्ञान प्रसार समाचार

इस अंक में

संपादकीय
शुक्र ग्रह के पारगमनों से जुड़े अभियान (पृष्ठ 3)
राबर्ट ब्वायल (पृष्ठ 10)
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ..... (पृष्ठ 14)
करी पत्ता (पृष्ठ 15)
मेमोरी मंत्र (पृष्ठ 16)
पहियों पर विज्ञान प्रदर्शनी – विज्ञान रेल (पृष्ठ 18)

एजुसेट – शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को समर्पित एक उपग्रह

एजुसेट, शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को समर्पित एक उपग्रह इस वर्ष प्रक्षेपित किया जाएगा और सन् 2005 में विज्ञान को समर्पित चैनल आरंभ करने के लिए उसके उपलब्ध होने की आशा है। इस चैनल के विभिन्न पहलुओं से बड़ी संख्या में शिक्षाविद्, शैक्षिक संस्थान और विशेषज्ञ पहले से ही सम्बद्ध है। डेकू (DECU) अहमदाबाद, और विज्ञान प्रसार ने मिलकर इस कार्य को करने का संकल्प लिया है। एक पृथक विज्ञान चैनल की आवश्यकता को स्वरूप देने के लिए देश के विभिन्न भागों में अनेक क्षेत्रीय बैठकों और कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। और अंत में विज्ञान चैनल के लिए एक संकल्पना वक्तव्य तैयार किया गया। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग में 25 फरवरी 2004 को एक बैठक में, विभिन्न विभागों/एजेन्सियों के सहयोग तथा विज्ञान चैनल के प्रबंधन की कार्ययोजना पर विचार किया गया। बैठक में साफ्टवेयर तैयार करने पर भी विचार हुआ। बैठक में प्रो. वी.एस. रामामूर्ति, श्री जी. माधवन नायर, चेयरमैन, इसरो, प्रो. यशपाल, प्रो. ई.वी. चिटनीस, श्री किरण कार्णिक, श्री सिद्धार्थ काक, श्री बी.एस. भाटिया, डॉ. विनय बी. काम्बले, श्री कार्तिकेय बी. साराभाई और सुश्री चंडिता मुखर्जी उपस्थित थे।

(बाएं से दाएं) श्री बी.एस. भाटिया, प्रो. वी.एस. रामामूर्ति, श्री जी. माधवन नायर, प्रो. ई.वी. चिटनीस और प्रो. यशपाल

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस 2004 पर राविप्रौसंप पुरस्कार

डॉ. सुबोध महंती, वैज्ञानिक 'एफ' विज्ञान प्रसार, जन संचार माध्यमों में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित सर्वोत्तम व्याप्ति के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार ग्रहण करते हुए। यह पुरस्कार उन्हें राष्ट्रीय विज्ञान दिवस समारोह पर 27 फरवरी 2004 को प्रदान किया गया। डॉ. आर. चिदम्बरम्, प्रधान वैज्ञानिक सलाहकार, भारत सरकार, इस पुरस्कार में पचास हजार रुपए नकद राशि, एक स्मृति चिन्ह और एक प्रशस्ति पत्र प्रदान करते हुए।

...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक...

विज्ञान प्रसार के लिए डॉ. सुबोध महंती द्वारा सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली 110 016 से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से सौरभ प्रिंटर्स प्रा. लि., बी–280, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया फेस – 1, नई दिल्ली 110 020 द्वारा मुद्रित
सम्पादक : डॉ. विनय बी. काम्बले

इंटरनेट : कैसे शुरू हुआ यह

व्यक्तिगत कम्प्यूटर सिर्फ लगभग बीस वर्ष पहले भारत में आए; और भारत में इंटरनेट, जिस रूप में आज हम जानते हैं, मात्र करीब दस वर्ष पुराना है। इसके बावजूद इंटरनेट के इस्तेमाल के बिना जीवन के बारे में सोचना मुश्किल लगता है! ई–मेल, चैट, समाचार, नौकरी की तलाश, उत्पाद संबंधी सूचनाएं, नेट पर खरीददारी, मनोरंजन, प्रतियोगिता, रेल या वायु टिकट, सॉफ्टवेयर या खेल डाउनलोड करना, वैवाहिक संबंध, आदि – यह सूची निरंतर बढ़ती ही जा रही है।

अवश्य, इस दशक में तो हमारी जीवन–पद्धति ही पूर्णतया परिवर्तित हो गयी है। परन्तु, यह सब शुरू कैसे हुआ? करीब 40 वर्ष पहले, रैन्ड कॉरपोरेशन, अमेरिका का अग्रणी शीत युद्ध थिंक टैंक, एक ऐसे संचार नेटवर्क के लिए प्रस्ताव लेकर आया, जिसमें ''कोई केन्द्रीय प्राधिकार नहीं'' होगा और जिसको ''प्रारंभ से इस प्रकार डिजाइन किया जाएगा कि जीर्ण–शीर्ण स्थिति में भी वह संचालित हो सके।'' सिद्धांत सरल थे। यद्यपि इस नेटवर्क को 'अविश्वसनीय' माना गया था, इसकी अपनी अविश्वसनीयता के परे पहुंच – जाने के लिए इसे विशिष्ट रूप से डिजाइन किया गया था। इस नेटवर्क की परिकल्पना कुछ ऐसी थी – इस नेटवर्क के सभी ''नोड'' प्रस्थिति के मामले में अन्य सभी नोडों के बराबर होंगे – प्रत्येक नोड के पास सूचनाओं के उत्पन्न करने, आगे जाने और संग्रहित करने के लिए अपना प्राधिकार होगा। सूचनाएं पैकेटों में विभाजित होंगी और प्रत्येक पैकेट पृथक्–पृथक् रूप से परिभाषित होंगे। प्रत्येक पैकेट कुछ विशिष्ट नोड से प्रारंभ होगा और कुछ अन्य विशिष्ट गंतव्य नोड पर समाप्त होगा। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पैकेट व्यक्तिगत आधार पर नेटवर्क के माध्यम से अपना रास्ता बना लेगा। पैकेट द्वारा अपनाया गया विशेष मार्ग महत्वपूर्ण नहीं था। केवल अंतिम परिणाम ही मायने रखते थे। पैकेट लगभग गंतव्य की दिशा में ही एक नोड से दूसरी नोड तक तब तक भटकते रहते हैं, जब तक सही स्थान पर पहुंच न जाएं। सामान्य अर्थों में यह एक प्रकार से ''अव्यवस्थित'' वितरण प्रणाली अवश्य सक्षम तो नहीं होती, किन्तु अपने स्थान तक पहुंचने में सफल अवश्य होती है।

60 के दशक के दौरान विकेन्द्रीकृत, ब्लास्टप्रूफ, पैकेट – स्वीचिंग नेटवर्क की पहेली जैसी अवधारणा का प्रतिपादन रैण्ड, मैसाच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी तथा यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, लॉस एंजेल्स द्वारा किया गया। पेंटागन की एडवांस्ड रिसर्च प्रोजेक्ट एजेन्सी (ARPA) ने संयुक्त राज्य अमेरिका में एक महत्वाकांक्षी परियोजना पर काम किया। नेटवर्क के नोड उच्च गति वाले कम्प्यूटर होने चाहिए थे। उस समय ये दुर्लभ एवं कीमती मशीनें थीं, जो राष्ट्रीय अनुसंधान नेटवर्किंग के लिए आवश्यक आवश्यकता थी। 1969 में इस प्रकार का पहला नोड यूसीएलए में प्रतिष्ठापित किया गया। दिसम्बर 1969 तक पेंटागन की सहायता के बाद चार नोड वाला एक प्रारंभिक नेटवर्क अस्तित्व में आया, जिसे *''अरपानेट''* कहा गया। चार कम्प्यूटर समर्पित उच्च गति वाले सम्प्रेषण लाइनों पर आंकड़े स्थानांतरित कर सकते थे। वे यहां तक कि दूसरे नोड्स के लिए दूर से ही प्रोग्राम भी बना सकते थे। वैज्ञानिक एवं शोधकर्ता लम्बी दूरी से ही एक–दूसरे की कम्प्यूटर सुविधाओं का इस्तेमाल कर सकते थे। 1971 में अरपानेट में 15 नोड थे जिनकी संख्या बढ़कर 1972 में 37 हो गयी। पूरे 1970 के दशक के दौरान अरपा नेटवर्क का विकास हुआ। इसकी विकेन्द्रीकृत संरचना ने विस्तार को सरल बना दिया। संचार के लिए अरपा का मूल मानक 'नेटवर्क कंट्रोल प्रोटोकॉल' या एनसीपी के नाम से जाना गया। जैसे–जैसे समय बीता और तकनीक विकसित हुई, एनसीपी का स्थान टीसीपी/आईपी नामक एक उच्चस्तरीय अपेक्षाकृत ज्यादा संबर्धित मानक ने ग्रहण कर लिया। टीसीपी अर्थात् ''ट्रांसमिशन कंट्रोल प्रोटोकॉल'' उद्गम स्थल पर संदेशों को पैकेटों की धारा में बदल देता है, उसके बाद गंतव्य पर पुनः उनको संदेशों में परिवर्तित कर देता है। आईपी या ''इंटरनेट प्रोटोकॉल'' पतों की देख–रेख करता है और यह देखता है कि पैकेट विविध नोड्स के आर–पार और यहां तक कि बहुविध मानकों के साथ विविध नेटवर्कों के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाते हैं या नहीं। 1983 में अरपानेट के सेना प्रभाग को समाप्त कर दिया गया और मिलनेट के नाम से अस्तित्व में आया। स्वयं अरपानेट 1989 में समाप्त हो गया।

70 और 80 के दशक में हुए विकास के साथ विभिन्न सामाजिक वर्गों ने अपने को शक्तिशाली कम्प्यूटर रखने में सक्षम पाया। इन कम्प्यूटरों को नेटवर्कों के बढ़ते संजाल से जोड़ना काफी सरल था। चूंकि टीसीपी/आईपी नामक सॉफ्टवेयर सार्वजनिक अधिकार में था, और मूल प्रौद्योगिकी विकेन्द्रीकृत थी, इसलिए एक या दूसरे से जुड़ने में अनावश्यक दखल देने से लोगों को रोकना कठिन था। इसी को 'इंटरनेट' के नाम से जाना गया। नेटवर्कों के बढ़ते संजाल में नोड्स जीओवी, एमआईएल, ईडीयू, कॉम, ओआरजी और नेट जैसे आधारभूत प्रकारों में विभाजित होते थे। आज भी इस प्रकार के संक्षिप्त शाब्दिक रूप टीसीपी/आईपी प्रोटोकॉल की मानक विशेषताएं हैं। टीसीपी/आईपी मानकों का इस्तेमाल अब वैश्विक हो गया है। आज इंटरनेट में हजारों नोड हैं जो सैकड़ों देशों में बिखरे पड़े हैं और प्रतिदिन कई ऑनलाइन आ रहे हैं।

इंटरनेट टीसीपी/आईपी नामक प्रोटोकॉलों से सहभागिता कर कम्प्यूटरों को कम्प्यूटरों से जोड़कर नेटवर्कों के संजाल में विकसित हुआ है। प्रत्येक में सूचना उपलब्ध कराने या प्रदान करने तथा/या सूचना तक पहुंचने और उसे देखने के लिए सॉफ्टवेयर चलाया जाता है। निश्चित रूप से, इंटरनेट फाइलों या दस्तावेजों या दूसरे कम्प्यूटर में संग्रहित सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए परिवहन वाहन है। इन्टरनेट एक अंतर्राष्ट्रीय संचार उपयोगिता सेवाप्रदाता प्रणाली हैं । यदि कोई कहता है कि ''मैंने सूचना इंटरनेट पर प्राप्त की है'' तो यह एक गलत बयान होगा। वास्तव में, उसका आशय यह होता है कि वह दस्तावेज (डॉक्यूमेंट) इंटरनेट से जुड़े कम्प्यूटरों में से एक कम्प्यूटर पर इंटरनेट के माध्यम से या उसका इस्तेमाल कर प्राप्त किया गया। स्वयं इंटरनेट सूचनाओं का संग्रह नहीं करता है। विश्वव्यापी संजाल (डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू या वेब) में ऊपर उल्लिखित सभी इंटरनेट सेवाओं और उससे भी अधिक सेवाएं सम्मिलित होती हैं। हम दस्तावेज, दृश्य चित्र एनीमेशन एवं वीडियो प्राप्त कर सकते हैं, ध्वनि फाइल को सुन सकते हैं, आवाज बोल या सुन सकते हैं, तथा कार्यक्रमों को देख सकते हैं जिनको विश्व में किसी भी सॉफ्टवेयर पर व्यावहारिक रूप से चलाया जा सकता है, बशर्ते हमारे कम्प्यूटर में ये सब चीजें करने के लिए उपयुक्त हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर विद्यमान हों।

इंटरनेट ने 1988 में भारत में प्रवेश तब किया जब कई भारतीय विश्वविद्यालय नेट के सदस्य बने। उस समय इंटरनेट आज की तुलना में काफी भिन्न था। शोधकर्ताओं एवं तकनीशियनों का एक छोटा समूह ही इंटरनेट के बारे में जानता था तथा उन्होंने तकनीकी सूचना को बांटने तथा मानकों एवं नेटवर्किंग प्रौद्योगिकी के विकास को सुगम बनाने के लिए मुख्य रूप से इसका इस्तेमाल किया। 90 के दशक के आरम्भ में इंटरनेट हमारे देश में एक सुपरिचित शब्द बन गया था। तब से इंटरनेट काफी तेजी से विस्तार जारी रखे हुए है। मार्च 2002 तक भारत के सक्रिय इंटरनेट ग्राहकों की अनुमानित संख्या 1.5 मिलियन थी। नैसकॉम (नेशनल एसोसिएशन फॉर सॉफ्टवेयर एंड सर्विसेज कम्पनीज) ने भविष्यवाणी की है कि वर्ष 2004–05 तक इंटरनेट ग्राहकों की संख्या बढ़कर 7.7 मिलियन और साथ ही उपयोगकर्ता आधार बढ़कर 50 मिलियन हो जाएगा।

शेष पृष्ठ... 9 पर जारी

सम्पादक : विनय बी. काम्बले
पत्र व्यवहार के लिए पता : **विज्ञान प्रसार** सी–24 कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–110016
दूरभाष : 26967532, फैक्स : 26965986
ई–मेल : *vigyan@hub.nic.in*
वेबसाइट : *http://www.vigyanprasar.com*

"ड्रीम 2047" में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रुप मे उत्तरदायी नहीं है।

"ड्रीम 2047" मे प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किये जा सकते हैं।

शुक्र ग्रह के पारगमनों से जुड़े अभियान

□ विनय बी. काम्बले
e-mail: vbkamble@alpha.nic.in

हेली का आह्वान

बुध ग्रह के पारगमन का अवलोकन करते समय एडमंड हेली (सन् 1656–1742) को 1691 में इसका अहसास हुआ कि ग्रहों के पारगमन के अवलोकन द्वारा पृथ्वी से सूर्य की दूरी का मापन किया जा सकता है। खास तौर पर उन्होंने इस बात पर बल दिया था कि शुक्र ग्रह के पारगमन इस कार्य की सिद्धि के लिए आदर्श सिद्ध हो सकते हैं। अतः खगोलीय समुदाय को इन पारगमनों से संबद्ध अवलोकनों को लेने का उन्होंने आह्वान दिया। सन् 1716 में एक महत्वपूर्ण पर्चे में प्रकाशित उनके इस आह्वान व चुनौती को पढ़कर यूरोप के खगोलविदों ने महत्वाकांक्षी अंतर्राष्ट्रीय अभियानों की योजना बनाई (देखिए, शुक्र ग्रह का पारगमन और खगोलीय इकाई, *ड्रीम 2047*, फरवरी 2004)। निश्चित रूप से यह छोटे–मोटे अभियानों की बात नहीं थी क्योंकि पृथ्वी के कुछ अति दुर्गम स्थलों से ही इन पारगमनों का अवलोकन किया जा सकता था। सन् 1761 और 1769 को घटित होने वाले शुक्र ग्रह के पारगमनों के लिए तो यह बात विशेष रूप से सत्य थी क्योंकि इन पारगमनों का दक्षिणी अफ्रीका, साइबेरिया, उत्तरी अमेरिका, हिंद महासागर, दक्षिणी प्रशांत क्षेत्र तथा मध्य अमेरिका से ही अवलोकन किया जा सकता था। काठ निर्मित जहाजों में लंबी और कठिनाइयों भरी समुद्री यात्रा ही इन स्थलों तक पहुंचने का एकमात्र जरिया थी। कहना न होगा कि अनेक मुश्किलों, स्कर्वी व अन्य व्याधियों तथा जहाज के डूबने व ध्वस्त होने के खतरनाक हादसों से दो–चार होकर ही यात्रियों के लिए गंतव्य तक पहुंचना संभव हो पाता था। ऊपर से आंकड़े भी काम के साबित हों, इसके लिए अवलोकन स्टेशनों के अक्षांश (लैटीच्यूड) तथा देशांतर (लांगीच्यूड) का अति परिशुद्धतापूर्वक मापन किया जाना भी अवलोकनकर्ताओं के लिए आवश्यक था। इसके लिए अति सावधानीपूर्वक लिए गए अवलोकनों की आवश्यकता पड़ती थी तथा अपने काम में सर्वश्रेष्ठ होने के साथ–साथ खगोलविदों के पास इन अवलोकनों को लेने के लिए जरूरी यंत्रोपकरणों का होना भी अनिवार्य था। नतीजतन काफी समय पहले से ही प्रेक्षण स्थल पर पहुंचकर यंत्रोपकरणों को लगाने से लेकर तमाम तैयारियां पूरी करके अवलोकनकर्ताओं को पारगमन के काफी समय पूर्व तथा पारगमन की समाप्ति के काफी समय बाद भी अपनी स्थिति के परिशुद्ध निर्धारण के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। आजकल तो वायुयानों द्वारा घंटों में ही यात्रा पूरी हो जाती है लेकिन उन दिनों की यात्रा महीनों और सालों में पूरी होनी थी। अतः कई बार तो अवलोकन पूरा होने में सालों–साल भी लग जाते थे। लंबी दूरी की यात्रा तथा अवलोकनोपयोगी घड़ियों, दूरबीनों तथा अन्य उपकरणों को ढो कर ले जाने की परेशानी के अलावा विभिन्न देशों की राजनीति भी इन यात्राओं में रोमांच का पुट डालने में अपनी भूमिका निभाती थी।

यह संयोग की ही बात थी कि 1761 में घटित होने वाले शुक्र पारगमन को अवलोकित करने की तैयारियों से जुड़े अधिसंख्य खगोलविद् अंग्रेज और फ्रांसीसी थे। यूरोप उन दिनों अशांति के दौर से गुजर रहा था और यह पारगमन तब घटित होने जा रहा था जब इंग्लैंड और फ्रांस के बीच चलने वाला प्रसिद्ध सप्तवर्षीय युद्ध (बाक्स 1) अपने चरमोत्कर्ष पर था। रोचक तथ्य यह था कि सही मायनों में इस युद्ध को विश्व युद्ध की संज्ञा दी जा सकती थी तथा यह तकरीबन दोनों गोलार्द्धों में ही लड़ा गया था। फ्रांस और इंग्लैंड के बीच इतनी कटुता भरी शत्रुता के बावजूद दोनों देशों के खगोलविदों को थल और समुद्री दोनों ही सीमाओं को पार करने के लिए आवश्यक अनुमति पत्र और सहयोग प्रदान किया गया था ताकि उन्हें किसी किस्म की कठिनाई का सामना न करना पड़े।

अठारहवीं व उन्नीसवीं सदियों के दौरान सौर पैरेलेक्स (सोलर पैरेलेक्स) या सौर दिग्भेद को मापने के मुख्य प्रयासों का संक्षिप्त ब्यौरा हम इस लेख में प्रस्तुत करेंगे। पर उन्नीसवीं सदी के दौरान हुए प्रयासों को बस छूते हुए ही अठारहवीं सदी में हुए प्रयासों के बारे में ही हम अधिक चर्चा करेंगे क्योंकि उन्नीसवीं सदी के अवलोकन अठारहवीं सदी में लिए गए अवलोकनों में और अधिक परिशुद्धता लाने के उद्देश्य से ही लिए गए थे। कुछ मुख्य अभियानों की चर्चा ही हम यहां करेंगे।

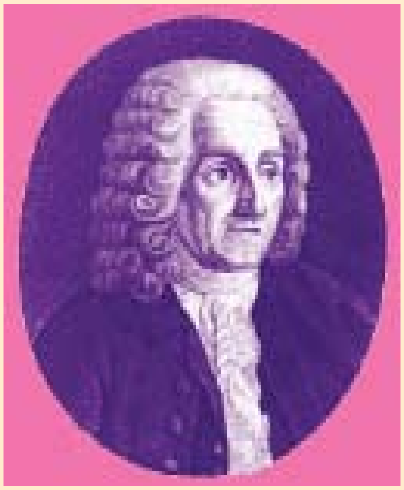

जोसेफ निकोलस डिलाईल

जोसेफ निकोलस डिलाईल

जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, अठारहवीं सदी का पहला पारगमन तब घटित हुआ था जब इंग्लैंड और फ्रांस के बीच चलने वाला सप्तवर्षीय युद्ध अपने चरमोत्कर्ष पर था। शुक्र पारगमन के अवलोकन में फ्रांस को ख्याति दिलाने वाले खगोलविदों में जोसेफ निकोलस डिलाईल (सन् 1688–1768) का नाम अग्रगण्य था। पारगमन संबंधी अभियान में अपनी आरंभिक रुचि दिखाने तथा एडमंड हेली के साथ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सम्पर्क बनाने के कारण जोसेफ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पारगमन के अवलोकन हेतु हेली द्वारा प्रस्तावित मूल तकनीक के क्रियान्वयन में जोसेफ ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। खगोलिकी में जोसेफ के रुझान का पता तभी चल गया था जब अठारह वर्ष की आयु में 1706 को घटित हुए पूर्ण सूर्य ग्रहण में उसने अपनी रुचि का प्रदर्शन किया था। गियोवानी डोमिनिको कैसिनी (सन् 1625–1712) के अनुरोध पर विभिन्न किस्म की खगोलीय सारणियों को तैयार करने में भी जोसेफ ने अपना योगदान दिया था। डिलाईल से हेली निश्चित तौर पर बहुत प्रभावित थे और न्यूटन भी। सन् 1761 व 1769 को घटित हुए शुक्र के पारगमनों संबंधी हेली के पूर्वानुमानों को संशोधित करके प्रकाशित करवाने का श्रेय भी डिलाईल को ही जाता है।

हेली के साथ 1764 में हुई भेंट ने डिलाईल की रुचि को और हवा देने का कार्य किया। परिणामस्वरूप सौर पैरेलेक्स की समस्या का विशद अध्ययन उसने आरंभ किया। अपने विश्लेषण के लिए उसने दो भिन्न दिशाएं पकड़ीं। एक तो सौर दूरी को ज्ञात करने के सभी पुराने प्रयासों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उसने अध्ययन किया। दूसरे, सभी समकालीन वैज्ञानिकों द्वारा इकट्ठा किए गए आंकड़ों तथा उनके द्वारा सुझाई गई विधियों का उसने वैश्लेशिक अध्ययन किया। सौर पैरेलेक्स संबंधी मापन की डिलाईल द्वारा प्रस्तावित विधि वस्तुतः हेली द्वारा सुझाई विधि का ही सरल रूप थी। हेली की तरह ही डिलाईल ने भी परिकल्पना की कि संपर्क के सटीक समय को निर्धारित कर पाना संभव है लेकिन इसके साथ–साथ उसने इस तथ्य को भी पहचाना कि संपूर्ण पारगमन या कम–से–कम अंतर्गमन (इंग्रेस) और निर्गमन (एग्रेस) दोनों को अवलोकित किया जाना आवश्यक नहीं है। इसके लिए पारगमन के पूरे काल के दौरान मौसम की अनुकूल परिस्थितियों का होना आवश्यक था लेकिन यह एक ऐसा कारक था जिस पर कभी भी भरोसा नहीं किया जा सकता था। यह तथ्य भी डिलाईल पर उद्घाटित हुआ कि (शुक्र) ग्रह को सूर्य की डिस्क के सामने से लंबा प्रपथ देखने वाले अवलोकनकर्ता को अपेक्षाकृत छोटे प्रपथ का अवलोकन करने वाले अवलोकनकर्ता की तुलना में पारगमन की शुरुआत कहीं पहले नजर आती है। यह जाहिर सी बात है क्योंकि दोनों ही आभासी प्रपथ हैं – छोटे प्रपथ की तुलना में लंबे प्रपथ को अपेक्षाकृत जल्दी शुरू होते हुए देर से खत्म होना चाहिए। अतः या तो अंतर्गमन अथवा निर्गमन पर संपर्क के सटीक काल के स्थानीय समय को दर्ज करना भर ही काफी था। फिर देशांतर और अवलोकन स्थल के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त करके

स्थानीय समय को ग्रिनिच माध्य समय (जी एम टी) के साथ समायोजित किया जा सकता था। उस दशा में दो अवलोकन बिंदुओं के बीच का समय अंतराल लम्बे और छोटे प्रपथों के संपर्क समयों के बीच के अंतर यानी दोनों संपर्क बिंदुओं के बीच की दूरी के समानुपाती होगा। एक बार इसका निर्धारण हो जाने पर पिछले लेख (*ड्रीम 2047*, फरवरी 2004) में वर्णित मूल विधि के इस्तेमाल से सूर्य के आकार और दूरी का परिकलन किया जा सकता है। क्रियान्वयन की दृष्टि से डिलाईल की विधि हेली की विधि से यकीनन श्रेष्ठ थी। इस विधि में किसी एक बिंदु से केवल एक ही अवलोकन लिए जाने की जरूरत थी और इसलिए प्रतिकूल मौसम की परिस्थितियों के कारण असफलता की संभावना इसमें कम थी; या इसे यूं भी कहा जा सकता है कि अगर ग्रह के अंतर्गमन और निर्गमन के अवलोकन एक ही स्टेशन से लिए जाते तो फिर सफलता की संभावना दोगुनी हो जाती। उपयोगी अवलोकन स्टेशनों के दायरे का विस्तार भी इसी विधि द्वारा हो गया था; विश्व के वे हिस्से भी इसमें शामिल हो गए थे जहां से केवल पारगमन की शुरूआत या समाप्ति ही अवलोकित की जा सकती थी। लेकिन डिलाईल की विधि में अवलोकन स्थल के देशांतर को अत्यंत परिशुद्धतापूर्वक निर्धारित करना आवश्यक था। ऊपर से विभिन्न दूरबीनों में इस्तेमाल होने वाले लेन्सों की शक्ति और गुणवत्ता भी सूर्य की चकती पर ग्रह द्वारा गुजारे जाने वाले आभासी समय को प्रभावित करती थी। यह पाया गया कि यह आभासी समय दूरबीन की लंबाई के समानुपाती था और गुणता भी सूर्य की चकती पर ग्रह द्वारा गुजारे जाने वाले आभासी समय को प्रभावित करती थी। यह पाया गया कि यह आभासी समय दूरबीन की लंबाई के समानुपाती था और अवलोकन स्टेशनों की भौगोलिक स्थितियों में भिन्नता के कारण प्राप्त होने वाले समयांतर का सही ढंग से इस्तेमाल करने के लिए इसे समझना बहुत जरूरी था।

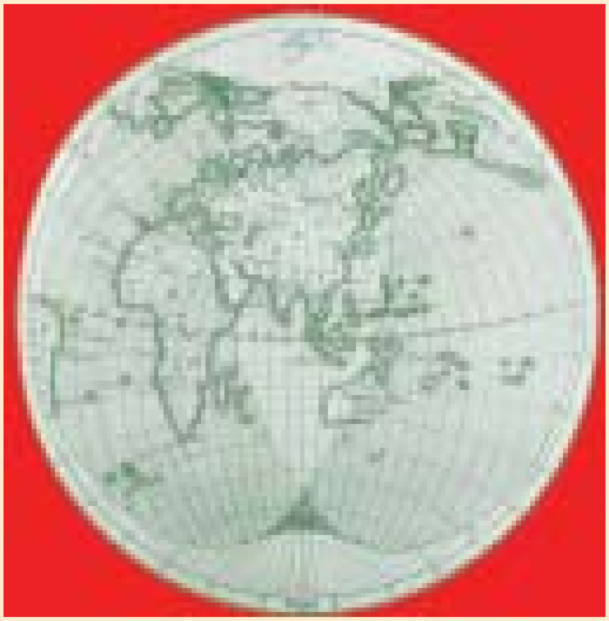

चित्र 1 : मैप्पे मोन्डे

1761 में की गई तैयारियां

सन् 1753 में घटित हुए बुध पारगमन के लिए डिलाईल ने भौगोलिक प्रक्षेपणों (प्रोजेक्शन) का प्रदर्शन इसके द्वारा तैयार किए गए *मैपी मोंड* (विश्व मानचित्र) में किया था। हर स्थल के फायदों और नुकसानों के निर्धारण को इस मानचित्र ने संभव बनाया था। सन् 1761 में घटित हुए शुक्र पारगमन के लिए भी उसने इसी किस्म का एक *मैपी मोंड* तैयार किया था (चित्र 1)। इसने एक समन्वित प्रयास को संभव बनाया जिसके अंतर्गत शुक्र पारगमन के अवलोकन के लिए विश्व के हर हिस्से की ओर खगोलविद् भेजे गए। उदाहरण के लिए, ग्यूलामी ली जेंटिल को भारत, चैपी द' ऑटेरोश को 1761 में साइबेरिया और 1769 में कैलीफोर्निया तथा एलेक्ज़ेंडर गुई पिंगरे को मैडागास्कर स्थित रॉडरिग द्वीप भेजा गया। सन् 1760–61 के जाड़े तक फ्रांस की सीमाओं के पार पारगमन के अवलोकन की फ्रेंच तैयारियां काफी आगे तक बढ़ चुकी थीं। लेकिन इन तैयारियों में फ्रांस ही अकेला नहीं था; सन् 1761 में चार वर्ष पुराने हो चुके सप्तवर्षीय युद्ध के दौरान अपने प्रधान शत्रु ब्रिटिश क्राउन के साथ फ्रांस के वैज्ञानिक सहयोग की गुंजाइश बची थी।

आश्चर्य की बात थी कि एडमंड हेली की इस अवधारणा कि शुक्र के पारगमनों द्वारा ब्रह्मांड के वास्तविक परिमाण का निर्धारण संभव है के बावजूद 1761 में शुक्र के पारगमन के अवलोकन हेतु ब्रिटिश तैयारियां में कोई विशेष उत्साह नहीं था। वास्तव में वर्ष 1760 तक 6 जून, 1761 को घटित होने वाले पारगमन को प्रेक्षित करने की तैयारियां नहीवत् थी। वह तो डिलाईल द्वारा जून, 1760 में रायल सोसायटी को *मैपी मोंड* और पारगमन संबंधी अपने अनुभव आधारित लिखित विवरण (मेमॉआर) की प्रस्तुति के बाद ही ब्रिटिश तैयारियों में कुछ उत्साह दिखाई दिया। उसी समय रायल सोसाइटी काउंसिल ने ''घटित होने वाले शुक्र पारगमन के अवलोकन के लिए उचित स्थलों पर उचित व्यक्तियों'' को भेजने पर विचार किया। सन् 1716 में हेली द्वारा की गई भविष्यवाणी तथा डिलाईल द्वारा बाद में तैयार किए गए *मैपी मोंड* और लिखित विवरण में उसके द्वारा रखे गए तार्किक तथ्यों के आधार पर दक्षिण अटलांटिक महासागर में स्थित सेंट हेलेना द्वीप को अवलोकन स्थल के रूप में प्राथमिकता प्रदान की गई। दूसरे स्थल के रूप में सुमात्रा के वेस्ट इंडियन द्वीप पर स्थित बेंकुलेन जबकि वैकल्पिक स्थान के रूप में बाटविया का चयन किया गया। अगला प्रश्न अभियान के लिए चुने जाने वाले व्यक्तियों द्वारा गंतव्य तक पहुंचने के साधनों के बारे में था। फ्रांस के साथ होने वाला सप्तवर्षीय युद्ध उस समय तक आधा ही खत्म हो पाया था। इसके मद्देनजर रायल सोसायटी ने ईस्ट इंडिया कंपनी के कई निदेशकों से सेंट हेलेना और इस्ट इंडीज में अपने अवलोकनकार रखवाने की पेशकश करते हुए उनसे मदद की गुहार की। संभवतया चालू युद्ध के कारण ही शुक्र पारगमन के अवलोकन ने राष्ट्रीयता की ओर एक प्रतिद्वंद्वी रूप अख्तियार कर लिया था। फ्रांस तथा अन्य यूरोपीय देशों द्वारा विश्व के विभिन्न हिस्सों तक खगोलीय अभियानों को रवाना किए जाने को ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा एक गंभीर और राष्ट्रीय अस्मिता के जुड़े प्रश्न के रूप में देखा गया। इसकी वजह भी थी। एडमंड हेली नामक अंग्रेज खगोलविद् द्वारा ही पिछली सदी में इस अभियान की सर्वप्रथम पहल की गई थी तथा ''विश्व के उद्भव के बाद जेरिमिया होरोक्स नामक एक और अंग्रेज द्वारा पारगमन के अवलोकन का पहला प्रयास किया गया था और इसके पहले किसी को भी अवलोकन में सफलता नहीं मिली थी।'' हालांकि रायल सोसायटी काउंसिल को लिखकर बेंकुलेन अभियान के लिए कइयों ने अपने आपको प्रस्तुत किया, लेकिन आखिकार चार्ल्स मेसॉन (सन् 1730–1786) तथा जेरेमिया डिक्सन (सन् 1733–1779) को ही इस अभियान के लिए चुना गया। श्रद्धेय नेविल मेस्केलीन (सन् 1732–1811) को सेंट हेलेना अभियान पर भेजे जाने के लिए चुना गया। सन् 1761 में घटित होने वाले शुक्र पारगमन के अवलोकन के लिए ब्रिटेन द्वारा बेंकुलेन और सेंट हेलेना भेजे जाने वाले केवल ये दो अभियान ही नहीं थे। उत्तरी अमेरिका में हार्वर्ड के जॉन विंथ्राप (सन् 1714–1779) की प्रेरणा पर मेसाचुसेट्स प्रांत ने न्यूफाउंडलैंड स्थित सेंट जोंस भेजे जाने वाले अभियान को मंजूरी दी। मेसाचुसेट्स उन दिनों

बाक्स 1

सप्तवर्षीय युद्ध (सन् 1756–63)

ब्रिटेन ओर फ्रांस के बीच होने वाला सप्तवर्षीय युद्ध सामूहिक और औपनिवेशिक प्रभुसत्ता हासिल करने के लिए लड़ा जाने वाला युद्ध था तथा एक व्यापक यूरोपीय शक्ति संघर्ष, जो आस्ट्रिया और प्रशिया के बीच साईलेसिया को लेकर लगी होड़ पर केंद्रित था, के साथ भी यह जुड़ा था। यूरोप में साईलेसिया पर प्रशिया अपना अधिकार जमा कर हैब्सबर्ग, आस्ट्रिया के मुकाबले की शक्ति बन बैठा था जबकि क्यूबेरोन की खाड़ी में हुई ब्रिटिश जीत ने फ्रांस की नौसैनिक महत्वकांक्षाओं को कुचल दिया था। समुद्र पार, एक वाणिज्यिक व औपनिवेशिक शक्ति के रुप में ब्रिटेन के उत्थान तथा उसके मुकाबले फ्रांस के पतन पर पुष्टि की मोहर लग चुकी थी। भारत में वांदिवास (1760) में हुई ब्रिटिश जीत ने भविष्य में भारतीय उपमहाद्वीप पर ब्रिटिश प्रभुत्व की नींव रख दी थी। ब्रिटेन की नौसैनिक श्रेष्ठता ने उत्तरी अमेरिका में फ्रांस के विस्तारित अंचल पर फौजी जीत हासिल करने का मार्ग प्रशस्त किया। ब्रिटेन ने कनाडा तथा फ्रांस अधिकृत मिसीसिपी के पूर्व के क्षेत्रों पर फ्लोरिडा, जो पहले स्पेन के अधिकार में था, सहित कब्जा कर लिया।

एक ब्रिटिश उपनिवेश (कालोनी) था। अतः 1761 को घटित होने वाले शुक्र पारगमन को प्रेक्षित करने के ब्रिटिश प्रयासों में इस स्वतंत्र औपनिवेशिक अभियान के आ जुड़ने से कुल ब्रिटिश प्रयासों को अप्रत्याशित रूप से बढ़ोतरी प्राप्त हुई। परिणामस्वरूप अठाहरवीं सदी में घटित होने वाले पारगमन के दो अवसरों में से प्रथम अवसर के अवलोकन का लाभ उठाने के लिए ब्रिटेन विलंब से ही सही, फ्रांस द्वारा भेजे जाने वाले अभियानों की बराबरी करने में सफल रहा। इन अवलोकनों में भाग लेने के पीछे के उत्साह और शिद्दत को बेंजामिन मार्टिन नामक अंग्रेज शख्स, जो उपकरण निर्माण तथा विज्ञान लोकप्रियकरण के क्षेत्र में उन दिनों एक जाना–माना नाम था, के निम्नलिखित शब्दों के रूप में संक्षेप में व्यक्त किया जा सकता है : ''अगर हम इनका (सन् 1761 तथा 1769 में होने वाले शुक्र के दोनों पारगमनों का) सर्वोत्तम फायदा उठाएं तो इसमें कोई संदेह नहीं कि आने वाले दस वर्षों में खगोल विज्ञान अपनी पूर्ण दक्षता को प्राप्त करेगा।''

एलेक्ज़ेंडर गुई पिंगरे

सन् 1761 को भेजे गए फ्रेंच अभियान

एक मुख्य फ्रेंच अभियान दल को अलेक्जेंडर गुई पिंगरे के नेतृत्व में हिंद महासागर के मेडागास्कर तट से दूर रॉडरिग के फ्रेंच द्वीप की ओर भेजा गया। 6 जून, 1761 की सुबह बारिश होकर थमी थी और बाद में सूरज घने बादलों की ओट जा छिपा था। शुक्र और सूर्य के बीच होने वाले पहले तथा दूसरे संपर्क यहां तक कि पारगमन की समाप्ति के समयों का निर्धारण करने में पिंगरे और उसके दल को सफलता नहीं मिली। फिर भी कुछ उपयोगी प्रेक्षणों को लेने में उन्हें जरूर कामयाबी मिली। आने वाले दिनों में अपने अवलोकन स्थल के अक्षांश और देशांतर का निर्धारण पिंगरे ने किया। इसके कुछ दिनों बाद एक ब्रिटिश जंगी जहाज ने वहां बमबारी की। द्वीप पर कब्जा करके पिंगरे को बंदी बना लिया गया। करीब सौ दिनों तक वह बंदी अवस्था में रहा। आखिकार फ्रांस को जाने वाले एक जहाज पर सवार होने का उसे अवसर मिल गया। उस समय तो ब्रिटिश जंगी जहाज से वह बच गया पर बाद में जिस जहाज में वह सवार था उसे घेर लिया गया। भयंकर युद्ध हुआ जिसमें पिंगरे को युद्ध बंदी बनाकर लिस्बन (पुर्तगाल) भेज दिया गया। कैद से रिहाई के बाद अभियान का कटु अनुभव दिल में संजोए पिंगरे स्वदेश भूमि मार्ग से वापस लौट गया।

चार्ल्स मेसॉन

एक अन्य फ्रेंच अभियान दल को साइबेरिया स्थित टोबोल्स्क की ओर जीन बापिस्ट चैपी द' ऑटेरोश के नेतृत्व में रवाना किया गया। उसने पहले तो घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले स्लेज पर यात्रा की। किस्मत देखिए कि जमी हुई वोल्गा नदी को उसने अभी पार ही किया था कि बर्फ पिघल कर बहने लगी। चैपी जब टोबोल्स्क पहुंचा तो पारगमन को घटित होने में केवल दस रोज ही बाकी थे। टोबोल्स्क के पास की नदी में बाढ़ आ गई थी। इससे स्थानीय लोगों के अंदर यह विश्वास घर कर गया कि अजीबोगरीब उपकरणों से युक्त सूर्य के साथ छेड़छाड़ कर रहे इस अनोखे विदेशी के कारण ही नदी में अचानक बाढ़ आई थी। नतीजतन उसकी शारीरिक सुरक्षा के लिए सुरक्षाकर्मियों की पूरी फौज तैनात करनी पड़ी थी। इसके बावजूद पारगमन की घटना से जुड़े समयों के बड़े अच्छे अवलोकन लेने में उसे सफलता मिली। न केवल समकालीन खगोलविदों के लिए ये अवलोकन बड़े उपयोगी थे बल्कि उन्नीसवीं सदी की समाप्ति तक इन्हें इस्तेमाल में लाया जाता रहा।

ज्यां चेप्पे डि ओटेरोके

मुख्य लक्ष्य यानी शुक्र पारगमन के अवलोकन के लिए भेजे गए तीन मुख्य फ्रेंच अभियान दलों में से जिसे सबसे कम सफलता मिली वह अभियान दल सबसे पहले रवाना होकर सबसे आखिर में लौटा था। इस अभियान दल के नेता गुलैमो जोसेफ हाइसिंथ जीन बापिस्ट ली जेंटिल डी ला गेलेसियर, जिन्हें संक्षेप में हम ''ली जेंटिल'' कह सकते हैं, थे। वह एक शिक्षित नेकदिल इंसान थे जिन्हें 26 मार्च, 1760 को पांडीचेरी के एक फ्रेंच उपनिवेश, जो मद्रास (चेन्नई) से बहुत दूर नहीं था, की ओर रवाना किया गया था। तीन महीनों की समुद्री यात्रा के बाद वह हिंद महासागर स्थित एक फ्रेंच उपनिवेश मारीशस पहुंचा। यह जानकर उसे बहुत सदमा पहुंचा कि हिंद महासागर पर ब्रिटिश जहाज छत्ते पर मक्खी की तरह छाए हुए हैं और पांडीचेरी को ब्रिटिश फौजों ने घेरा हुआ है। समुद्री सीमा से निकलने के वैध अनुमति पत्र होने के बावजूद चालू युद्ध के कारण उन्हें दिखाने में यकीनन खतरा पैदा हो सकता था। लेकिन वह हिम्मत हारने वाले प्राणियों में से नहीं था। पांडीचेरी जाने वाले एक फौजी जहाज में वह सवार हो गया, पर दुर्भाग्य से बीच रास्ते में ही उसे खबर मिली कि पांडीचेरी पर चार महीने पहले ही ब्रिटिश फौजों का कब्जा हो चुका था। मजबूरन जहाज को वापस मारीशस लौटा लाना पड़ा। जब पारगमन घटित हुआ तो ली जेंटिल उस समय बीच समुद्र में ही था। फ्रेंच फौजी जहाज के डेक से किसी किस्म के उपयोगी अवलोकनों को लेना असंभव था। कितनी अफसोसनाक बात थी! लेकिन हिम्मत न हारकर ली जेंटिल ने यह फैसला किया कि मारीशस में रहकर ही आठ साल बाद होने वाले अगले पारगमन के घटित होने की वह प्रतीक्षा करेगा। इस पारगमन के अवलोकन के लिए बढ़िया जगह के चुनाव संबंधी गणनाओं के साथ–साथ मारीशस और निकट के मेडागास्कर से जुड़े वानस्पतिक, जैव, नृ व भूवैज्ञानिक अध्ययनों का सिलसिला उसने शुरू किया। आखिरकार वह इसका पता लगाने में सफल रहा कि 1769 में होने वाले पारगमन के लिए फिलीपींस स्थित मनीला ही सर्वोत्तम स्थान होगा तथा अपने भावी अभियान की योजना बनाने में वह व्यस्त हो गया।

नेविल मेस्केलीन

सन् 1761 के ब्रिटिश अभियान

एक प्रमुख अभियान के अंतर्गत चार्ल्स मेसॉन और जेरेमिया डिक्सन को सुमात्रा स्थित बेंकुलेन की ओर रवाना कर दिया गया। उनकी यात्रा अभी शुरू ही हुई थी कि देखते–देखते एक फ्रेंच जंगी जहाज ने उनके जहाज पर हमला बोल दिया। भयंकर युद्ध के बाद मृत तथा 37 घायलों के साथ उनके जहाज को प्लाइमाउथ बंदरगाह लौट आना पड़ा। जहाज में रखे खगोलीय उपकरणों को भी कुछ क्षति पहुंची थी। ऐसे में जहाज को गहन मरम्मत की आवश्यकता थी। इससे उत्पन्न देरी ने समय रहते बेंकुलेन पहुंचना उनके लिए असंभव बना दिया। समुद्री मार्ग में रद्दो–बदल कर केप ऑफ गुड होप (दक्षिण अफ्रीका) से शुक्र पारगमन को प्रेक्षित करने की नए सिरे से तैयारी शुरू हुई। समय पर अपने अवलोकन स्टेशन को उन्होंने स्थापित किया। सौभाग्य से अति उत्कृष्ट किस्म के आंकड़े प्राप्त करने

में उन्हें कामयाबी मिली। आपसी सहयोग से दोनों ने इतना अच्छा कार्य किया कि ब्रिटिश सरकार ने अमेरिका में पेनसिलवेनिया तथा मेरिलैंड के उपनिवेशों के बीच की विवादित सीमा के सर्वेक्षण के लिए दोनों को 1763 में वहां रवाना किया। जिस सीमा का उन्होंने सर्वेक्षण किया था उसे आज भी दोनों राज्यों के बीच की सीमारेखा के रूप में मान्यता मिली हुई है तथा इसे मेसॉन–डिक्सन रेखा के नाम से जानी जाती है।

नेविल मेस्केलिन के नेतृत्व में दूसरे अभियान दल को अटलांटिक महासागर के बीचोंबीच स्थित सेंट हेलेना की ओर रवाना किया गया। इस अभियान दल को कोई विशेष सफलता नहीं मिली। दल के लिए भोजन की अच्छी व्यवस्था नहीं थी तथा मौसम भी उमस भरा था। दुर्भाग्यवश सूर्य की बादलों की ओर जा छिपा जिससे मेस्केलिन पारगमन की समाप्ति को प्रेक्षित करने से चूक गया। नतीजतन उसके आंकड़ों की कोई विशेष उपयोगिता नहीं रही।

यहां हम दो और अभियानों की संक्षेप में चर्चा करेंगे। जॉन विंथ्राप, जो मेसाचुसेट्स के खाड़ी उपनिवेश के हार्वर्ड कालेज में थे, को पारगमन के अवलोकन हेतु न्यूफाउंडलैंड स्थित सेंट जोंस भेजा गया। पारगमन संबंधी उपयोगी आंकड़े उसे प्राप्त हुए तथा उसकी यात्रा कभी झंझट–झमेलों से काफी हद तक मुक्त रही। दूसरा अभियान एक आस्ट्रियाई अभियान था जिसमें फादर मैक्सिमिलियम हैल को उत्तरध्रुवीय वृत्त के ऊपर स्थित नार्वे के वार्दो नामक स्थान पर भेजा गया था। उन्हें भी पारगमन संबंधी अच्छे आंकड़े प्राप्त हुए। प्रसंगवश बताना उचित रहेगा कि जर्मन भाषा में ''हेल'' का अर्थ होता है ''प्रकाश या दीप्ति''!

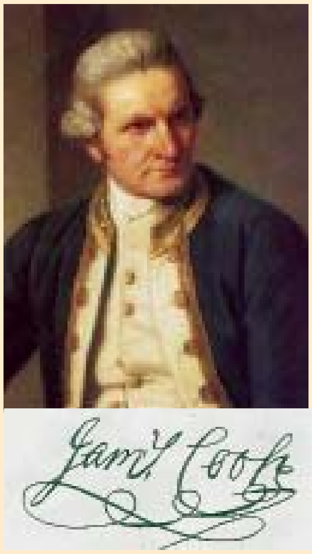

कैप्टेन जेम्स कुक

सन् 1761 के पारगमन से प्राप्त परिणाम

आखिर 1761 के पारगमन से क्या नतीजे प्राप्त हुए? पैरेलेक्स के परिकलन के लिए कई मुख्य अवलोकन स्थलों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण जटिल व तुलनात्मक तकनीकों से किया गया। इस तरह सौर पैरेलेक्स के लिए 8.565 चाप सेकेंड का मान प्राप्त हुआ। दूसरी विधि द्वारा 8.56 चाप सेकेंड का मान निकला जबकि एक तीसरी विधि द्वारा लंबन का औसत मान 8.57 चाप सेकेंड प्राप्त किया गया। लेकिन इस मान को लेकर कोई आम वैज्ञानिक सहमति नहीं बन पाई। बल्कि फ्रेंच और ब्रिटिश खगोलविदों के बीच 1761 के पारगमन से प्राप्त हुए मान को लेकर विवाद ही छिड़ गया। *अंततः खगोलविदों के बीच इस बात को लेकर सहमति हुई कि चूंकि 1761 को घटित हुए पारगमन के अवलोकनों पर आधारित सौर पैरेलेक्स के मान में अनिश्चितता है, 1769 में घटित होने वाले अगले पारगमन की प्रतीक्षा करने के अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं है।* परिणामस्वरूप शुक्र के पारगमन के अवलोकन हेतु सावधानी से की गई तमाम तैयारियों तथा जबर्दस्त विश्वव्यापी प्रयासों के बावजूद सौर पैरेलेक्स के मान का सटीक निर्धारण सफलतापूर्वक कर पाना एक सपना ही बना रहा। एक कठिनाई जो इस पारगमन से संबद्ध अवलोकनों को लेकर उपस्थित हुई थी वह मुख्यतया ब्लैक ड्राप प्रभाव (ड्रीम 2047, फरवरी 2004) के कारण थी जिसके चलते शुक्र और सूर्य के बीच के संपर्क के सटीक समय का निर्धारण संभव नहीं था। दूसरा बड़ा कारण अवलोकन स्थलों के देशांतरों का सटीक निर्धारण था। यकीनन अठारहवीं सदी के लिए यह एक बड़ी समस्या थी।

चित्र 2 : कैप्टेन कुक की यात्रा

सन् 1769 को घटित पारगमन

अठारहवीं सदी में होने वाले पारगमन की दूसरी घटना जब घटित हुई इंग्लैंड और फ्रांस के बीच चलने वाला सप्तवर्षीय युद्ध तब समाप्त हो चुका था। नतीजतन पारगमन के प्रेक्षण हेतु यात्रा के लिए निकलना तब अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित हो चुका था। पहले पारगमन के आंकड़ों को सहेजते हुए खगोलविद् दूसरे पागरमन को अवलोकित करने की तैयारियों में नए सिरे से जुट गए। एक बार फिर से फ्रांस, ब्रिटेन तथा कुछ अन्य देशों द्वारा प्रमुख अभियानों को हरी झंडी दिखाई गई। यहां हम संक्षेप में 3–4 जून, 1769 को घटित हुए पारगमन के अवलोकन के लिए भेजे जाने वाले प्रमुख अभियानों की ही चर्चा करेंगे।

सन् 1769 को भेजे गए फ्रेंच अभियान

इस बार चैपी को कैलीफोर्निया स्थित बाजा के ऊपर स्थित मिशन सैन जोस डेल काबो भेजा गया। साइबेरिया स्थित टोबोल्स्क के अपने पिछले अभियान के विपरीत इस बार के अभियान में चैपी को विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। पारगमन के समय के उत्कृष्ट आंकड़े उसे प्राप्त करने में सफलता मिली। अपने अवलोकन स्थल के देशांतर को 18 जून, 1769 को घटित हुए चंद्रग्रहण द्वारा उसने निर्धारित किया। साथ ही साथ बृहस्पति के पहले और दूसरे उपग्रहों के निमीलन (इमर्शन) को अवलोकित करने की आम तकनीक के इस्तेमाल द्वारा भी उसे इस देशांतर को निकालने में सफलता मिली। लेकिन पारगमन घटित होने के शीघ्र बाद ही वह गांव जहां उसका अवलोकन स्थल स्थित था तथा मिशन ऑफ सैन जोस दोनों ही स्थानों में एक महामारी ने धावा बोल कर वहां की लगभग तीन चौथाई आबादी का सफाया कर दिया। इस महामारी में चैपी के इंजीनियर पॉली को छोड़कर उसके बाकी सभी सहायक काल–कवलित हो गए। महामारी ने चैपी को भी अपनी चपेट में लेकर उसे बीमार कर दिया। इस बीमारी की हालत में भी उसने काफी समय तक अपने अवलोकन कार्य को चलाए रखा। चंद्र ग्रहण से संबद्ध एक महत्वपूर्ण अवलोकन को लेने में उसे जब सफलता मिली तब महामारी अपने चरमोत्कर्ष पर थी। 1 अगस्त, 1769 को 41 वर्ष की आयु में महामारी ने चैपी की भी जान ले ली। केवल उसका इंजीनियर पॉली ही बच पाया जो चैपी के उपकरण, अवलोकन संबंधी आंकड़े तथा उसकी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का ब्यौरा देते कागजातों को अपने साथ लेकर लौटा। पॉली की वापसी की यात्रा उसे उन जंगलों और बीहड़ों से होकर ले गई जहां कभी मेक्सिको का टेक्सास राज्स स्थित था। टेक्सास के बारे में उसकी टिप्पणी यह थी कि जो भोजन वहां मिलता था वह सूअरों के भी खाने योग्य नहीं था!

याद करें कि मारीशस के विविध वैज्ञानिक पहलुओं के अध्ययन में ली जेंटिल व्यस्त था। उसने कई द्वीपों के बारे में जानकारी इकट्ठी की। दूसरे पारगमन के अवलोकन लेने की योजना भी वह साथ ही साथ बनाता रहा। अब चूंकि युद्ध समाप्त हो गया था, वह किसी भी जगह की यात्रा करने के लिए स्वतंत्र था। मारीशस के गवर्नर तथा फ्रेंच एकेडमी से उसने उसका परिचय देने वाले पत्र हासिल किए। मई, 1766 को मनीला जाने वाले एक स्पेनी जहाज में वह सवार हो गया। तीन महीनों की थकान भरी समुद्री यात्रा के बाद वह मनीला पहुंचा। लेकिन फिलीपींस का स्पेनी गवर्नर विदेशियों से नेह रखने वाला नहीं था। बेचारा ली जेंटिल, जासूस समझकर उसे हैरान–परेशान किया गया। पैरिस की एक संधि के तहत पांडीचेरी को तब फ्रांस को लौटाया जा चुका था। अतः ली जेंटिल यहां से अपना बोरिया–बिस्तर बांधकर मकाओ को रवाना हो गया जहां से उसने पांडीचेरी जाने की तैयारी की। फरवरी, 1768 में पांडीचेरी को जाने वाले एक भारतीय जहाज में वह सवार हो गया। फिर मद्रास (चेन्नई) को जाने वाले पुर्तगाली जहाजों के जरिए 27 मार्च, 1768 को ली जेंटिल अंततः पांडीचेरी पहुंचने में सफल रहा। पारगमन को घटित होने में अभी चौदह महीने बाकी थे।

पांडीचेरी में गवर्नर लॉ की मदद से शहरी किले के खंडहरों पर एक शानदार वेधशाला का उसने निर्माण किया। चूंकि पारगमन की घटना को होने में तब काफी समय बाकी था, ली जेंटिल उसके सफल अवलोकन हेतु सावधानीवूर्वक आंकड़े जुटाने के कार्य में संलग्न हो गया। इन आंकड़ों में अवलोकन स्थल के अक्षांश व देशांतर का निर्धारण, क्षितिज पर वायुमंडलीय अपवर्तन का अध्ययन, गवर्नर ला की मदद से पूर्ण चंद्र ग्रहण का अवलोकन तथा बृहस्पति के उपग्रहों से संबद्ध जरूरी अवलोकन आदि शामिल थे। पारगमन के अवसर पर मौसम पूरी तरह से अनुकूल था। लेकिन रात को दो बजे आंधी की बदलती आवाज से अचानक ली जेंटिल की नींद खुल गई। बिस्तर से उठकर उसने आसमान पर जो नजर डाली तो बादलों के एक झुंड को उसने पांडीचेरी की ओर बढ़ते देखा। ठीक पारगमन के दिन सूरज उगा तो सही लेकिन बादलों के पीछे और फिर शुक्र पारगमन के दौरान समूचा दिन ही बादलों से ढका रहा। नौ साल घर से बाहर बिताकर और करीब एक लाख किलोमीटर का सफर तय करने के बाद उसने लिखा : ''मैं दो हफ्ते से भी अधिक समय तक घोर निराशा की स्थिति में रहा। मुझे जर्नल (एक किस्म की डायरी जिसमें रोज का ब्यौरा लिखा जाता है) पर कलम चलाने की हिम्मत ही नहीं हो पा रही थी। फ्रांस को अपने अभियान संबंधी रिपोर्ट को कलमबद्ध करते दौरान कई बार तो जर्नल मेरे हाथ से छूट कर ही गिर गया।'' किस्मत की मार देखिए, मनीला, जहां पारगमन के अवलोकन के लिए उसने पहले जाने का फैसला किया था, में उस दिन धूप खिली थी!

मैक्समिलियन हेल

ली जेंटिल पांडीचेरी में बस एक जहाज के इंतजार में ही रुका था जो उसे घर वापस ले जाता। इस दौरान वह खतरनाक पेचिश और बुखार का भी शिकार हो गया जिससे उसकी जान जाते-जाते बची। आखिरकार 1770 में मारीशस को जाने वाले एक जहाज में चढ़ने में उसे कामयाबी मिली। मारीशस पहुंचकर फ्रांस जाने वाले जहाज का नए सिरे से उसे इंतजार करना पड़ा। लेकिन आखिर उसे एक फ्रेंच जहाज में जगह मिल ही गई। केप ऑफ गुड होप के पास जहाज को हरिकेन (एक किस्म का झंझावात) का सामना करना पड़ा जिसने उसके अंजर-पंजर ढीले कर दिए और वह किसी तरह बस मारीशस लौटने में सफल रहा।

ली जेंटिल स्पेन के दक्षिण-पश्चिम तट पर स्थित केडिज नामक शहर व बंदरगाह को जाने वाले एक स्पेनी जंगी जहाज में सवार होने में किसी तरह कामयाब हो गया। दुर्भाग्य से यह जहाज भी तूफानों से जा घिरा और केप ऑफ गुड होप से निकलने में ही इसे दो हफ्ते लग गए। आखिरकार अगस्त, 1777 में वह केडिज पहुंचने में सफल रहा। समुद्री सफर से थक-हार कर उसने सड़क मार्ग को यात्रा के लिए चुना। उसके द्वारा जर्नल रूपी डायरी में दर्ज किए विवरण के अनुसार पूरे 11 साल 6 महीने और 13 दिन बाद वह अपने प्राणों के प्यारे वतन फ्रांस पहुंचा। दुर्भाग्य ने लेकिन यहां भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। पैरिस पहुंचकर उसे पता चला कि उसके मरने की अफवाह सुनकर उसके सगे संबंधी उसकी जायदाद को हड़पने की फिराक में लग गए थे, यहां तक कि फ्रेंच एकेडमी ने भी उसके पद (चेयर) पर किसी और को आसीन कर दिया था!

ताहिती (एरियल)

वकीलों की सेवाएं लेकर ली जेंटिल ने अपने रिश्तेदारों पर मुकदमा ठोक दिया। उसे अपनी जायदद का कुछ हिस्सा तो वापस मिल गया पर मुकदमेबाजी ने उसे दिवालिया बना दिया। लेकिन आखिरकार उसकी तकदीर भी रंग लाई। एकेडमी ने उसके लिए एक विशेष पद की सृष्टि कर उसे उस पर आसीन कर दिया। मैडम पॉटियर नामक एक धनाढ्य महिला, जिसे वसीयत के बतौर काफी जायदाद मिली थी, से उसने विवाह रचाया। दोनों विवाह बंधन में बंधकर अति सुखपूर्वक रहे। उनकी एक बेटी भी हुई। 22 अक्टूबर, 1792 में ली जेंटिल की मृत्यु हुई।

सन् 1769 को भेजे गए ब्रिटिश अभियान

सन् 1769 को घटित होने वाले शुक्र पारगमन के अवलोकन हेतु विलियम वेल्स तथा जे. डाइमांड के नेतृत्व में एक ब्रिटिश अभियान को विश्व के पोलर बियर केपिटल के नाम से जाने जाने वाले हडसन की खाड़ी की ओर भेजा गया। सख्त जाड़े ने उन पर कहर ढाया और अल्पकालीन ग्रीष्म काल के दौरान पैदा होने वाली काली मक्खियों (ब्लैक फ्लाई), मच्छरों, घोड़ों पर लगने वाली मक्खियों (हार्स फ्लाई) तथा अन्य कीटों ने तो उनका जीते जी ही भोज बना डालने की साजिश कर ली। इसके बावजूद वेल्स के दल को पारगमन संबंधी अच्छे अवलोकन लेने में कामयाबी मिली।

एक प्रसिद्ध अभियान के साथ कप्तान जेम्स कुक (सन् 1728-1779) का नाम भी जुड़ा है। 26 अगस्त 1766 को प्लाइमाउथ से एच एम एस एनडेवर नामक जहाज पर सवार होकर कप्तान कुक और जोसेफ बैंक्स ने अपनी यात्रा शुरु की। इस यात्रा ने जो 1771 में जाकर पूरी हुई, अभियान दल के यात्रियों की संख्या को 94 से घटाकर 56 तक पहुंचा दिया था। फिर भी यह अभियान अत्यंत सफल रहा ओर इससे उन्हें विश्वव्यापी प्रसिद्धि मिली। वास्तव में उनका असली अभियान पृथ्वी के नौपरिसंचालन (सर्कमनेविगेशन) द्वारा दक्षिण प्रशांत क्षेत्र का अन्वेषण करना था। अपनी यात्रा के बीच में ही शुक्र पारगमन के अवलोकन के लिए ताहिती के दक्षिणी प्रशांत द्वीप पर उन्हें अपने जहाज का लंगर डालना था। सात महीनों की समुद्री यात्रा के बाद वे ताहिती पहुंचे। वहां के स्थानीय बाशिंदों ने गर्मजोशी से उनका स्वागत किया। जमीन से ऊंची एक माकूल जगह चुनकर खाड़ी के ऊपर उन्होंने एक वेधशाला स्थापित की। आज भी उस स्थल को `पाइंट वीनस` के नाम से जाना जाता है। कप्तान कुक को इस दौरान अपने नाविकों का मिजाज ठीक रखने में बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा था। बुरी तरह से ऊब जाने के कारण उकताहट से भरकर कप्तान कुक के लिए वे परेशानी का कारण बन रहे थे। कुछ उपकरणों की चोरी भी हो गई। लेकिन इसके बावजूद कप्तान कुक और उनके साथी को पारगमन समय संबंधी उत्कृष्ट अवलोकन लेने में सफलता मिली। वास्तव में इसी अभियान के दौरान ही विख्यात (या कुख्यात) ब्लैक ड्राप प्रभाव ने विशेष रुप से ध्यानाकर्षण किया। इस प्रभाव ने पारगमन काल मापन में कम न हो सकने वाली क्रमबद्ध त्रुटि के कारण परिशुद्धता को अपेक्षित 2 सेकेंड की बजाए 10 सेकेंड पर ला खड़ा किया था। कप्तान कुक के अभियान दल ने यह आशा व्यक्त की थी कि बेहतर उपकरणों से ब्लेक ड्राप प्रभाव को कम किया जा सकेगा लेकिन इसमें प्रधान भूमिका तो पृथ्वी के वायुमंडल की ही थी। कप्तान कुक के दल में शामिल खगोलविद् चार्ल्स ग्रीन अपनी सफलता का आनंद उठाने से वंचित रह गया। वापसी में बीच रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई। कुक का दल पृथ्वी का नौपरिसंचालन पूर्ण कर सुरक्षित इंग्लैड लौटने में सफल रहा। दल का उत्साह देखते ही बनता था। यह अभियान पूर्णतया सफल रहा और एक कुशल नाविक अन्वेषक के रुप में कुक की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। कप्तान कुक द्वारा इकट्ठे किये गये जैविक नमूनों को उसके रिकार्ड से ही चित्र 3 में दर्शाया गया है। उसने न्यूजीलैंड के तट का समुद्री चार्ट तैयार किया

तथा आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट का अन्वेषण कर उस पर ब्रिटेन का अधिकार स्थापित किया। 1772–1775 के दौरान अंटार्क्टिका – दक्षिण ध्रुवीय महाद्वीप की खोज के लिए वह प्रशांत क्षेत्र लौटा। पर 1776–1779 के दौरान अमेरिका के चारों ओर का पथ त्रासदीपूर्ण ढंग से ही हुआ जब हवाई के स्थानीय बाशिंदों के साथ हुई झड़प में वह मारा गया।

इनके अलावा भी कुछ ओर अभियान दल रवाना किए गए थे जिनमें विशेष उल्लेख आस्ट्रिया निवासी फादर मेक्सीमिलन हैल का किया जा सकता है। एक

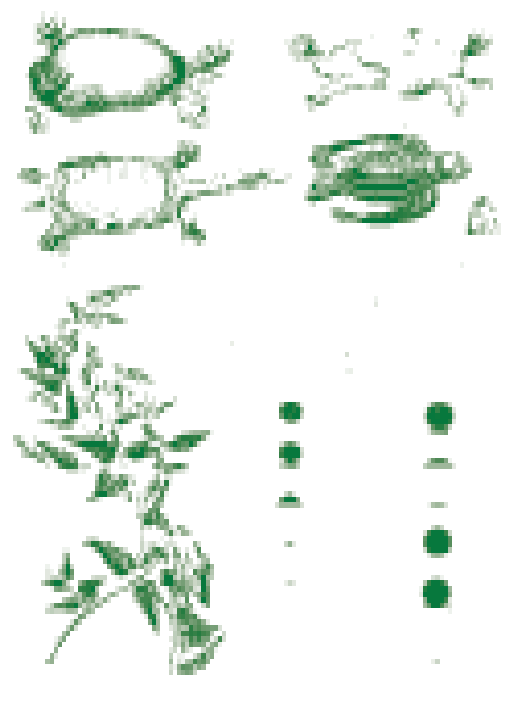

चित्र 3 : कप्तान कुक के अवलोकन : चित्र में दाहिनी ओर नीचे सूर्य के बिंब पर शुक्र का पारगमन दिखाया गया है। अभियान में एकत्रित वनस्पति तथा प्राणियों के नमूने दिखाये गये हैं। इनमें से कई नमूने विज्ञान को इस अभियान के पूर्व परिचित नहीं थे।

बार फिर से वह नार्वे स्थित वार्डो लौटा ओर पारगमन काल मापन संबंधी अच्छे आंकड़े उसे प्राप्त हुए। फिलाडेल्फिया स्थित अमेरिकन फिजिकल सोसाइटी के सहयोग से उत्तरी अमेरिका के 19 ब्रिटिश उपनिवेशों में भी अवलोकन किए गये थे, नार्वे के तट से दूर तथा उत्तरी केप से 10 किलोमीटर दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित हेमरफेस्ट द्वीप पर जेरिमियल डिक्सन ने पुनः एक बार अवलोकन किया जबकि विलियम बेली ने दक्षिण केप से अपने अवलोकन लिए। चार्ल्स मेसॉन ने पारगमन के अवलोकन हेतु उत्तरी – पश्चिम द्वीप पर स्थित डोनेगाल नामक काउंटी जाने का विचार बनाया।

सन् 1769 में 63 विभिन्न अवलोकन स्थलों से 138 अवलोकनकारों ने पारगमन का अवलोकन किया था जबकि 1761 के अवलोकन स्थलों की संख्या 62 और अवलोकनकर्ताओं की कुल संख्या 120 थी। लेकिन इस विश्वव्यापी जर्बदस्त प्रयासों द्वारा भी सौर पैरेलेक्स के लिए एक नियत मान प्राप्त करने का सपना अधूरा ही रहा। सात वर्ष तक चले विविध आंकड़ों के विश्लेषण के बाद सौर लंबन के मान को 8.43 चाप सेकेंड से 8.80 चाप सेकेंड के परिसर में ही प्राप्त करना संभव हो सका। पहले पारगमन से प्राप्त 8.28 से 10.60 चाप सेकेंड के बीच के सौर लंबल की तुलना में यह निश्चित तौर पर कहीं अधिक परिष्कृत व बेहतर परिणाम था। सन् 1824 में जे. एफ. एन्के ने सौर पैरेलेक्स के लिए 8.5776 चाप सेकेंड का मान प्राप्त किया। करीब पच्चीस वर्षों तक अधिसंख्य खगोलीय पर्चों में इसी मान का प्रयोग किया जाता रहा।

समकालीन खगोलिकी की दृष्टि से देखने पर देशांतर परिशुद्धता की समस्या तथा ब्लैक ड्राप प्रभाव से निपटने की असमर्थता दो ऐसे प्रधान कारक थे जिन्होंने अठारहवीं सदी के पारगमन के अवलोकन में बाधाएं उत्पन्न की थीं।

बाक्स 2

फादर लाफों द्वारा 9 दिसंबर 1874 को घटित हुए शुक्र पारगमन का अवलोकन

9 दिसंबर, 1874 को सौर चकती के समक्ष गुजरते हुए शुक्र ने विश्व भर के खगोलविदों को उत्साह से भर दिया था। इटली के सरकार ने प्रोफेसर ताचिनी के नेतृत्व में विद्वत्जनों के एक दल को भारत भेजा जबकि एक ब्रिटिश अभियान, जिसमें स्टोनीहर्स्ट वेधशाला से संबद्ध फादर पेरी तथा फादर सिडग्रीर्व्स शामिल थे, को अंटार्क्टिका महासागर स्थित करग्युलेन भेजा गया।

पूर्वी भारतीय रेल की कॉर्ड लाइन पर स्थित मुददापुर (मधुपुर) को प्रोफेसर ताचिनी ने अपने अवलोकन स्थल के रुप में चुना तथा उन्होंने फादर लाफों को भी इस अभियाान में शामिल होने का विनीत निमंत्रण भिजवाया। फादर लाफों ने उस अभियान का निम्नलिखित विवरण तैयार कर उसे बाद में प्रकाशित भी करवाया था :

सावधानीपूर्वक किए गए सभी शुरुआती इंतजामों के बाद हम लोग उत्सुकतापूर्वक सूर्य के उदय होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उत्सुकतापूर्वक इसलिए क्योंकि प्रोफेसर ताचिनी के आगमन के बाद से लगभग रोजाना ही मौसम के खुशनुमा होने के बावजूद दो या तीन रोज पहले आसमान में उपस्थित रहने वाले बादलों ने खगोलविदों के अंदर एक गहरे डर और संशय का भाव जगा दिया था। मुंह अंधेरे चार बजे ही सभी उठकर आसमान में निगाह जमा बैठे थे और नजारा भी कोई बहुत भरोसा दिलाने वाला नहीं था। हल्के मगर बहुसंख्या में बादल क्षितिज पर छा गए थे जो सूरज के उगने के साथ एक गुलाबी आभा से नहा उठे थे। इस बात से अदमित चारों अवलोकनकार कालमापी यंत्रों (क्रोनोमीटर) को हाथ में लिए अपनी–अपनी वेधशालाओं में अवलोकन लेने के लिए चले गये।

डॉ. पामर के बंगले के बाजू में विशेषतः इस काम के लिए बनाए गए पक्के प्लेटफार्म पर प्रोफेसर ताचिनी ने घूमते गुंबदों वाली चार छोटी–छोटी वेधशालाएं बनवाई थीं। पहली वेधशाला में उच्च शक्ति वाले एक शानदार स्पेक्ट्रोटेलीस्कोप, जिसे विषुववृत्तीय तरीके से स्थापित किया गया था, की मदद से वह स्वयं इस घटना की बारीकियों के साथ अवलोकन लेने वाले थे। दूसरी व तीसरी वेधशालाओं में, क्रमशः प्रोफेसर डोर्ना ओर मुझे शुक्र के सूर्य के साथ चारों संपर्को के सटीक कालमापन को विषुववृत्तीय अपवर्तकों और सावधानीपूर्वक समायोजित किए गए कालमापी यंत्रों की मदद से क्षतिरहित ढंग से ही अंजाम देना था। चौथी वेधशाला प्रोफेसर एबेटी के लिए थी जो प्रोफेसर ताचिनी की तरह ही स्पेक्ट्रोटेलीस्कोप की मदद से अवलोकन लेने वाले थे।

प्रथम संपर्क का संभावित समय जैसे–जैसे नजदीक आता गया वैसे–वैसे सूर्य के चारों ओर अधिक बादल छाते गए मानो वे उसे छिपा देने के लिए आतुर हों। इन अवांछित पर्दो के बीच की बची–खुची जगहों से इसके चमकीले किनारों को देख पाना हमारे लिए काफी कठिन था। फिर भी प्रोफेसर डोर्ना और मुझे दोनों शुरुआती संपर्को का करीब–करीब परिशुद्ध अवलोकन लेने में कामयाबी मिल ही गई।

स्पेक्ट्रमी पद्धति के समझने वाले अंदाज लगा चुके होंगे कि हमारे प्रतिभावान् प्रमुख और उनके सहयोगी पारगमन के इन दोनों शुरुआती चरणों को नही देख पाए होंगें क्योंकि इस तरह के सूक्ष्म प्रकृति के अनुसंधानों के लिए वातावरण का एकदम साफ होना एक आवश्यकत शर्त है।

सौभाग्य से उसके ठीक बाद आकाश धीरे–धीरे साफ हो गया और पारगमन के दौरान प्रोफेसर ताचिनी ने शुक्र के परिमंडल में जल वाष्प की मौजूदगी के असंदिग्ध चिन्हों को ढूंढ निकाला। यह परिणाम, जिसकी संपुष्टि प्रोफेसर एबेटी ने भी की, (शुक्र) ग्रह संबंधी हमारी जानकारी में एक महत्वपूर्ण बढ़ोतरी थी।

इस अप्रत्याशित खोज तथा वातावरण की बेहतर दशा से उत्साहित हम सब अपने–अपने उपकरणों की नेत्रिकाओं (आई पीस) के पास फिर से जा डटे और इस दफा दोनों अंतिम संपर्को को एकदम संतोषजनक ढंग से देखने में हम सभी कामयाब रहे। इस बार भी अवलोकन की सामान्य विधि द्वारा हम दोनों के समयों का मापन लगभग एक जैसा ही रहा जबकि उधर स्पेक्टॉसकोप पर अवलोकन लेते हमारे सहयोगियों को अन्य सभी विधियों की अपेक्षा स्पेक्ट्रमी विधि के अति श्रेष्ठ होने का प्रायोगिक प्रमाण प्राप्त करने का सुअवसर मिला और संपर्क के वास्तविक काल का निर्धारण उन्होंने सरल और सटीक ढंग से सेकेंड के सूक्ष्म अंशो के रुप में किया। इस तरह अभियान का मुख्य उद्देश्य पूरा हो गया।

उपसंहार के रुप में मैं यह कहना चाहूंगा कि प्रोफेसर डोर्ना ने दोनों अंतर्गत और निर्गमन के समय ब्लैक ड्रॉप (श्याम बिन्दु) (ड्रॉस) को देखा था लेकिन मेरे द्वारा प्रयुक्त होने वाले 52 लाइनों वाले एपर्चर और 6 फुट फोकस दूरी वाले स्टार्क निर्मित जर्मन दूरबीन में इसका एक रत्ती भरी अंश भी देखने को नहीं मिला। मेरे द्वारा प्राप्त नतीजों के अनुसार पारगमन कर कुल समय 4 घंटे 41 मिन्ट ओर 1.5 सेकेंड था।

प्रसंगवश बताना उचित होगा कि डा. महेंद्रलाल सरकार ने भी इस पारगमन का अवलोकन किया था।

अन्य कारकों में अवलोकनकर्ताओं के व्यक्तित्व व भिन्न शारीरिक गुणों के कारण आंकड़ों में उत्पन्न फेर–बदल, इस्तेमाल होने वाले दूरबीनों की त्रुटियों तथा अवलोकन के लिए वांछित प्रकाश की उपस्थिति आदि को शामिल किया जा सकता है।

उन्नीसवीं सदी के अभियान

सौर पैरेलेक्स के परिशुद्ध मापन में ऊपर वर्णित कठिनाइयों ने उन्नीसवीं सदी में एक बार फिर से विश्व भर के खगोलियों को विभिन्न कोनों तक अभियान भिजवाकर 9 दिसंबर, 1874 तथा 6 दिसंबर, 1882 के पारगमनों को प्रेक्षित करने के लिए प्रेरित किया। उन्नीसवीं सदी के पारगमन के अवलोकन पिछली सदी के मापनों को परिष्कृत करने के उद्देश्य से ही लिए गए थे। तब तक पारगमन के स्पेक्ट्रमी (स्पेक्ट्रास्कोपिक) प्रेक्षणों को लिया जाना संभव हो चुका था। पूर्वी भारत स्थित मुद्दापूर (माधुपुर) को भेजा गया इटली का अभियान 1874 को घटित हुए शुक्र पारगमन के स्पेक्ट्रमी अवलोकनों के लिए खगोलविज्ञान के इतिहास में विख्यात है। पालरमो की खगोलीय वेधशाला में संबद्ध पेट्रो ताचिनी को इस अभियान के आयोजन का जिम्मा सौंपा गया था। इटली के खगोलविदों ने इस अभियान में एक बड़ा महती परिणाम प्राप्त किया। शुक्र ग्रह के स्पेक्ट्रम अवलोकनों की वैधता और महत्व को प्रदर्शित करने में भी उन्हें सफलता

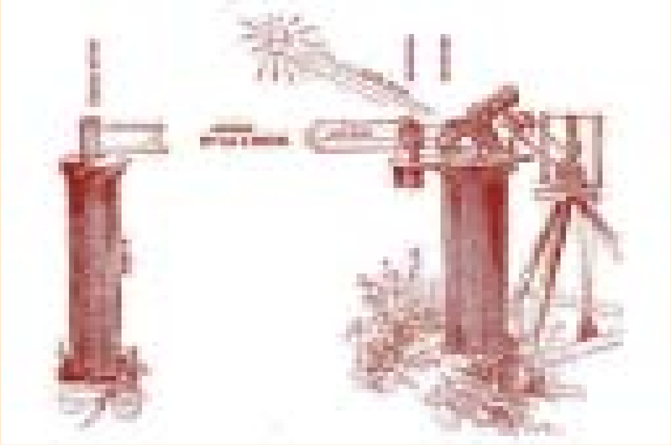

चित्र 4 : उन्नीसवीं सदी में शुक्र पारगमन के अवलोकनार्थ बनायी गयी यंत्र प्रणाली

मिली। माधुपुर अभियान दल के एक सम्मानित सदस्य बेल्जियम पूल के जेसुइट फादर ई. लाफों (सन् 1839–1908) थे जो सेंट जेवियर कालिज, कलकत्ता (कोलकाता) में भौतिकी के प्रोफेसर थे। वह एक अच्छे मौसम विज्ञानी और एक शौकिया स्पेक्ट्रमिकीविद् (स्पेक्ट्रासकोपिस्ट) भी थे। लाफों को कलकत्ता (कोलकाता) में एक खगोलीय वेधशाला की स्थापना करने का श्रेय शामिल था तथा वह एक जाने–माने लोकप्रिय विज्ञान संचारक भी थे (ड्रीम –2047, फरवरी 2004) शुक्र पारगमन के प्रेक्षणों पर लाफों द्वारा वर्णित विवरण बाक्स 2 में दिया गया है। उड़िसा के प्रख्यात खगोलविद् पठाणी सामंत ने भी संभवतः 1874 में घटित शुक्र पारगमन का अवलोकन किया था। विशाखापट्टनम् स्थित अंकितम् व्यंकट नरसिंग राव, जिनकी अपनी निजी वेधशाला थी, ने भी इस पारगमन का अवलोकन किया था। मद्रास (चेन्नई) वेधशाला से चिंतामणी रघुनाथाचारी ने भी संभवतः 1874 के पारगमन का अवलोकन किया था। उन्नीसवीं सदी में पारगमन के अवलोकन के लिये निर्मित यंत्र प्रणाली को चित्र 4 में दिखाया है। पारगमन की घटना घटित होने के दौरान ली गई एक तस्वीर चित्र 5 में दी गयी है।

आखिर सफलता ने चरण चूमें

साइमन न्यूकाम ने अठारहवीं सदी के आंकड़ों को 1874 तथा 1882 में घटित हुए शुक्र पारगमन के आंकड़ों के साथ समन्वित कर सौर पैरेलेक्स का परिष्कृत मान 8.79 चाप सेकेंड प्राप्त किया जो पृथ्वी की सूर्य से दूरी (खगोलीय इकाई) के (149.59±0.31) मिलियन किलोमीटर जितना है। परिशुद्धता में यह 1/480 वे हिस्से के बराबर था। बीसवीं सदी के समापन काल के दौरान रेडार द्वारा पृथ्वी की दूरी के मापनों ने खगोलीय इकाई के मान को 30 मीटर की शुद्धता तक परिष्कृत कर इसके आधुनिक मान 149,597,870.691±.030 किलोमीटर के बराबर लाने में मदद की।

चित्र 5 : 1874 में अवलोकित शुक्र पारगमन की एक तस्वीर

उपर्युक्त चर्चा में अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों के दौरान सौर लंबन, जिसने सौर मंडल और ब्रह्मांड के विस्तार के स्तर की जानकारी हमें प्रदान की, को मापने के प्रयासों को संक्षेप में हमने वर्णन किया है। सन् 2004 और उसके बाद 2012 में होने वाले शुक्र के पारगमनों के दौरान इन अवलोकनों को विभिन्न स्थलों से दोहराया जाना सार्थक प्रयास होगा। यकीनन इतिहास को पुनः जीने का एक महती अवसर हमें इससे प्राप्त हो सकता है।

संदर्भ :

1. द ट्रांजिट आफ वीनस : ए स्टडी ऑफ एटींथ सेंचुरी साइंस, लेखक हैरी बुल्फ, प्रिंसटन विश्वविद्यालय प्रेस) सन् 1969)।
   प्रस्तुत लेख मुख्यतः इसी पुस्तक पर आधारित है। इसमें 18वीं सदी में सौर पारगमन को मापने के प्रयासों का अत्यंत प्रभावशाली विवरण प्रस्तुत किया गया है।
2. द ट्रांजिट ऑफ वीनस – लेखक डेविड मुरे, 6 दिसम्बर, 1874।
   http:// home.att.net/~o.caimi/VENUS.pdf
3. ट्रांजिट ऑफ द सन – लेखक फ्रेड एस्पेनैक
   http://sunearth.gsfc.nasa.gov/eclipse/transit/transit.html
   दशकों से पारगमनों के अध्ययन और भविष्यवाणी के कार्य में लगे एक अत्यंत अनुभवी खगोलविज्ञानी ने इस पुस्तक में पारगमनों का अत्यंत प्रामाणिक ब्यौरा प्रस्तुत किया है।
4. शुक्र ग्रह का पारगमन तथा खगोलीय ईकाई – विनय बी. काम्बले, ड्रीम 2047, फरवरी 2004।
5. फादर यूजीन लाफों – सुबोध महंती, ड्रीम 2047, फरवरी 2004।
6. फादर यूजीन लाफों – अरुण कुमार बिस्वास, एशियाटिक सोसायटी (कोलकाता)।
7. स्पेक्ट्रोस्कोपिक ऑब्ज़र्वेशन्स ऑफ द 1874 ट्रान्ज़िट ऑफ वीनस : द इटालियन पार्टी एट मुद्दापुर, ईस्टर्न इन्डिया।
   लुईसा पिगारो तथा वालेरिया ज्ञानिन, जर्नल ऑफ एस्ट्रोनोमिकल हिस्टरी एन्ड हेरिटेज 4 (1) : 43–58, 2001

अनुवादक : आभास मुखर्जी

इंटरनेट...*पृष्ठ... 2 का शेष*

यह ध्यान देना दिलचस्प है कि लगभग 70 प्रतिशत उपयोगकर्ता 15–30 आयु वर्ग के बीच में हैं। करीब 75 प्रतिशत उपयोगकर्ता पुरुष और 25 प्रतिशत महिलाएं है, लेकिन यह स्थिति काफी तेजी से बदल रही है। आज भी इंटरनेट उपयोगकर्ता उच्च आय वर्ग में आते हैं, लेकिन हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर की कीमतों में कमी आने के साथ, अधिक से अधिक लोगों की पहुंच में इंटरनेट आ सकेगा। हमारे देश में स्वतंत्र सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के सृजन और एक युक्तियुक्त प्रोएक्टिव नीति ने आईटी क्षेत्र और परिणामस्वरूप इंटरनेट की वृद्धि में सहायता प्रदान की है। हमारे देश में इंटरनेट का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। यह शिक्षा, विकास एवं सक्षम प्रशासन के क्षेत्र में अपार संभावनाओं के साथ–साथ सूचना और ज्ञान का एक बड़ा भंडार खोलता हैं 1969 में चार नोड के नेटवर्क के साथ की गयी शुरुआत बढ़कर नेटवर्कों का एक बड़ा संजाल बन गयी है और यह वृद्धि लगातार जारी है।

❑ विनय बी. काम्बले

राबर्ट ब्वायल

जिन्होंने आधुनिक रसायन विज्ञान की आधारशिला रखी

❑ सुबोध महंती
e-mail: mahantisubodh@hotmail.com

''रसायन विज्ञान के क्षेत्र में ब्वायल का मुख्य योगदान था, प्रयोग, गणना और यथार्थ प्रेक्षण पर उनका जोर देना। उन्होंने अम्ल–क्षार सूचक के रूप में वनस्पति रंजक के प्रयोग ओर धातु की पहचान के लिए लौ परीक्षण जैसे कई विश्लेषणात्मक परीक्षण विकसित किये। किसी रसायनज्ञ का अपने पदार्थों की शुद्धता के प्रति सजग होने की परंपरा ब्वायल से शुरू होती है।''

ए डिक्शनरी ऑफ साइंटिस्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999

''द स्केप्टिकल किमिस्ट (1661) के प्रकाशन के साथ ही ब्वायल ने रसायन विज्ञान का एक अधिक आधुनिक दृष्टिकोण के लिए मार्ग प्रशस्त किया जिसने पूर्ववर्ती अरस्तू के चार रंगों के सिद्धांत सिद्धांत और अलकेमिकल विचारों को एक किनारे कर दिया और प्रीस्टले तथा लेवोसियर के द्वारा 'रासायनिक क्रांति' की शुरुआत का रास्ता खोल दिया।''

द कैम्ब्रिज डिक्शनरी ऑफ साइंटिस्ट्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस (द्वितीय संस्करण, 2002)

आश्चर्यजनक रूप से ब्वायल एक अलकेमिस्ट थे, लेकिन उनकी अलकेमी उनके परमाणुवाद का तार्किक परिणाम थी। यदि सभी पदार्थ एक ही बुनियादी तत्वों का केवल पुनर्संयोजन है तो उनका उनका रूपांतरण संभव होना चाहिए। आधुनिक परमाणु भौतिकी ने उन्हें सही साबित किया है।

चैम्बर्स बायोग्राफिकल डिक्शनरी, सेंटेनरी एडिशन, चैम्बर्स हारप पब्लिशर्स लिमिटेड, 1997

राबर्ट ब्वायल ने रसायन विज्ञान के अध्ययन को विज्ञान की एक अलग शाखा के रूप में स्थापित किया। वास्तव में ''आधुनिक रसायन विज्ञान के जनक'' उपाधि के कई उचित दावेदारों में से राबर्ट ब्वायल भी एक हैं। वह पहले ऐसे प्रख्यात वैज्ञानिक थे जिन्होंने नियंत्रित स्थितियों में प्रयोग किए और प्रक्रिया, उपकरण और प्रेक्षण से संबंधित विस्तृत विवरण के साथ अपना अनुसंधान प्रकाशित किया। *द स्केप्टिकल किमिस्ट* उनका सबसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रकाशन था। 1661 में प्रकाशित इस पुस्तक में ब्वायल ने तत्व का विचार प्रतिपादित किया। यह सत्य है कि तत्व का ब्वायल से विचार एक हद तक अस्पष्ट था लेकिन उनका विचार तब तक स्वीकार किए जा रहे तत्व के बारे में भ्रमपूर्ण धारणा से स्पष्ट रूप से अलग था। ब्वायल ने ही सबसे पहले ''रासायनिक विश्लेषण'' शब्द का इस्तेमाल किया। उन्होंने इस शब्द का उसी अर्थ में उपयोग किया जैसा कि इसे आज हम समझते हैं। उन्होंने यांत्रिकी, चिकित्सा, द्रवगतिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया और निर्वात पंप के साथ विविध प्रकार के प्रयोग किए। ब्वायल का सबसे रोचक और प्रभावी योगदान था उनकी ''कापसक्यूलर अथवा यांत्रिक परिकल्पना''। यह भौतिक परमाणुवाद का उनके समय तक का संपूर्ण और सबसे विस्तृत विकास था। अलकेमी के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों में उनकी रुचि थी। अलकेमी में उनकी रुचि धन–दौलत प्राप्त करने की इच्छा से नहीं बल्कि ईश्वर और प्रकृति के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से हुई। ब्वायल ''इनविजिबल कॉलेज'' की गतिविधियों में सक्रिय थे, यह ''नये दर्शन'' के प्रति समर्पित एक औपचारिक निकाय था जो 1663 में रायल सोसाइटी के रूप में परिवर्तित हो गया। आधुनिक रासायनिक विचार के विकास में ब्वायल का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन दुर्भाग्य से आज उन्हें सिर्फ ब्वायल्स नियम के लिए ही जाना जाता है। ब्वायल 17वीं शताब्दी की एक प्रमुख बौद्धिक हस्ती थे। ब्वायल एक बहुसर्जक लेखक भी थे। वह एक महान प्रयोगवादी थे। उनकी वैज्ञानिक रुचि का क्षेत्र काफी व्यापक था।

राबर्ट ब्वायल

अपेन पूरे जीवनभर बेहतर तरीकों और प्रक्रियाओं की खोज के द्वारा ब्वायल ने मानव जीवन में व्यापक सुधार करना चाहा। उदाहरणस्वरूप, खेती के तरीकों में सुधार, औषधियों व चिकित्सीय प्रक्रियाओं में सुधार, निर्वात पैकिंग के द्वारा खाद्य संरक्षण की संभावना और कई अन्य चीजों में उनकी रुचि थी। वह समुद्र के खारे पानी को आसवन द्वारा स्वच्छ जल में बदलने की एक परियोजना में भी शामिल थे। संभवतः ब्वायल ने एक वाणिज्यिक उद्यम भी स्थापित किया था जो रसायनों का उत्पादन करता था।

उनकी अपने धर्म ईसाइयत में अगाध श्रद्धा थी। उन्होंने बाइबल को व्यापक स्तर पर उपलब्ध कराने के लिए अपना काफी समय और ऊर्जा लगायी। उन्होंने बाइबल का कई भाषाओं जैसे आयरिश, तुर्की और कई मूल अमेरिकी भाषाओं में अनुवाद कराया। ब्वायल को यह मानने में कोई संकोच नहीं था (यद्यपि एक अधिक बौद्धिक रूप में) कि वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करने के लिए ईश्वर कुछ लोगों की सहायता करता है। 1663 में ब्वायल ने लिखा था : ''और यद्यपि मैं यह निश्चयपूर्वक कहने का साहस नहीं कह सकता....... कि ईश्वर ने देवदूत अथवा स्वप्न संकेत के द्वारा रसायन विज्ञान के महान रहस्य को मनुष्य के सामने उजागर किया...... लेकिन मैं इस बात का विश्वास करता हूं कि ईश्वर की कृपा से, कुछ लोगों को यह योग्यता प्राप्त हुई कि वे प्रकृति के अध्ययन में निपुणता प्राप्त कर सके जिसका बहुत से

लोगों को पता नहीं चलता।'' ब्रायल ने एक परीक्षित धर्म होने की आवश्यकता पर बल दिया। हालांकि, वास्तविक रूप में उन्होंने देखा ''प्रायः इस प्रकार के माहौल में बड़े हुए लोग वहां से प्राप्त सही या गलत विचारों का समर्थन करते हैं।'' इसी प्रकार उन्होंने लिखा है : ''अधिकांश लोग ईसाइयत को सिर्फ इसलिए मानते हैं कि यह उनके माता–पिता, अथवा उनके देश अथवा उनके राजकुमार या उनके वर्तमान या होने वाले संरक्षक का धर्म है; इसलिए उन्हें ईसाई तो कहा जा सकता है लेकिन यदि उनका जन्म–कर्म तुर्की में होता तो इसी आधार पर उन्हें मुसलमान भी कहा जा सकता था। ब्रायल चमत्कारों में भी विश्वास करते थे। वास्तव में उनके ईसाइयत अपनाने के पीछे चमत्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने देखा कि ईसाइयत के चमत्कारों को ईश्वर ने स्पष्ट मान्यता दी है।

क्रिश्चियन ह्यूजेंस

राबर्ट ब्रायल का जन्म 25 जनवरी, 1627 को आयरलैण्ड में मुंस्टर स्थित लिस्मोरे किले में हुआ था। अपने मां–बाप की कुल पंद्रह संतानों में से उनका स्थान चौदहवां था। लेकिन वयस्क अवस्था तक जीवित रहने वाले वह अपने माता–पिता की अंतिम संतान रहे, इस प्रकार वे परिवार के सबसे कम आयु के सदस्य हो गये। उनके पिता रिचर्ड ब्रायल (1566–1643) पहले अर्ल ऑफ कॉर्क थे। रिचर्ड ब्रायल काफी धनी थे और उन्हें ''महान अर्ल'' के नाम से भी जाना जाता है। रिचर्ड ब्रायल 22 वर्ष की अवस्था में इंग्लैंड छोड़कर आयरलैंड चले गये। ब्रायल की मां कैथरीन फेंटन रिचर्ड ब्रायल की दूसरी पत्नी थीं और उनकी पहली पत्नी का निधन उनकी पहली संतान के जन्म के एक वर्ष के भीतर ही हो गया। ब्रायल को अपने मां–बाप को जानने के लिए बहुत कम समय मिल सका। उनके तीसरे जन्म दिन के कुछ हफ्तों के बाद ही उनकी मां का एक शिशु को जन्म देते समय निधन हो गया। ब्रायल ने अपने पिता को अंतिम बार तब देखा जब वे एक महाद्वीपीय यात्रा पर जाने वाले थे। उस समय ब्रायल बारह वर्ष की अवस्था के थे। अपनी जीवनी में उन्होंने अपने जन्म के बारे में लिखा है कि ''एक महान परिवार के वारिस के रूप में जन्म लेना एक प्रकार की तड़क–भड़कयुक्त दासता होती है'' और ''यह कई पुरानी हो चुकी सच्चाइयों की जानकारी के लिए रुकावट होती है जिसे आम आदमी की संगति के बिना नहीं प्राप्त किया जा सकता।'' अपने पिता पर टिप्पणी करते हुए ब्रायल ने लिखा है : ''अपने समृद्ध उद्योग पर ईश्वर की कृपा से उन्होंने बहुत मामूली शुरुआत से इतनी प्रचुर और उत्कृष्ट संपत्ति अर्जित की कि उनकी समृद्धि ने बहुत से प्रशंसक तो पैदा किए पर उनके समकक्ष खड़े होने वाले कुछ ही लोग हो सके।''

ब्रायल का लालन–पालन सुविधापूर्ण माहौल में हुआ। उनके मां–बाप का मानना था कि छोटे बच्चों का बेहतर पालन–पोषण मां–बाप से दूर रखकर ही किया जा सकता है। अतः ब्रायल को वहां से दूर उनके देश में ले जाया गया। ब्रायल के पास कोई विश्वविद्यालयी डिग्री नहीं थी। ब्रायल को घर पर ही शिक्षा दी गयी और इसके बाद उन्होंने चार वर्ष (1635–38) तक एटन में पढ़ाई की। ब्रायल ने अपने एक भाई के साथ 1635 में एटन में प्रवेश लिया। ये दोनों एटन के भाई हेडमास्टर जॉन हेरिसन के घर में रहे। जब ब्रायल ने एटन में प्रवेश लिया उस समय वह एक प्रकार का पसंदीदा स्थल बन रहा था जहां प्रभावशाली लोग अपने बच्चों को अध्ययन के लिए भेजते थे। ब्रायल ने लिखा है कि हैरिसन ने ब्रायल को ''ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा'' प्रदान की। ईटन में ब्रायल का अध्ययन बहुत अच्छा चल रहा था। लेकिन, हैरिसन के सेवानिवृत्त होने के बाद ब्रायल उस शैक्षिक अनुशासन से सामंजस्य बनाए रखने में सफल नहीं हो सके जिसे हेरिसन के उत्तराधिकारी ने लागू किया। अंत में उनके अभिभावकों ने दोनों भाइयों को नवम्बर 1638 में एटन से निकाल लिया। एटन छोड़ने के बाद ब्रायल ने आइज़क मार्कोम्बस को निजी शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया। वह अवरग्यू के निवासी थे। ब्रायल को उनके भाई फ्रांसिस और मर्कोम्बस के साथ फ्रांस और इटली (1638–44) की लंबी यात्रा पर भेज दिया गया। इटली में उन्होंने हाल में दिवंगत गैलीलियो के कार्य का अध्ययन किया। उनकी विदेश यात्रा के दौरान ही उनके पिता को आयरिश विद्रोहियों के साथ युद्ध में उलझना पड़ा और सितम्बर 1643 में उनकी मृत्यु हो गयी। ब्रायल कुछ समय तक जेनेवा में भी रहे और वह वहां मुख्य रूप से अपने शिक्षक की कमाई पर ही निर्भर रहे। अपनी इंग्लैंड यात्रा के खर्च के लिए उन्हें 1644 की गर्मियों में अपने कुछ जेवरात बेचने पड़े। जब ब्रायल इंग्लैंड लौटे तो वह एक अव्यवस्थित राज्य में बदल चुका था। 1642 से ही राजा चार्ल्स को संसद के साथ युद्ध करना पड़ रहा था और 1644 में कई युद्धों ने राजा व संसद दोनों को अस्त–व्यस्त कर दिया था। इस परिस्थिति का वर्णन करते हुए ब्रायल ने एक पत्र में लिखा था : ''वर्ष 1644 के मध्य में मैंने इंग्लैंड में सुरक्षित प्रवेश किया जहां परिस्थितियां इस तरह भ्रमपूर्ण थीं कि मेरे पिता की मृत्यु के बाद स्टालब्रिज की जागीर मुझे उत्तराधिकार में मिल चुकी थी जबकि मैं वहां इसके चार महीने बाद जा सका।

गॉटफ्राइड विल्हेम लेब्निज

जॉन विल्किंस

ब्रायल को स्टालब्रिज में रहना शुरू करने में कुछ समय लग गया। इस दौरान वह अपनी बहन कैथरीन के साथ रहे और अपने शिक्षक का कर्ज चुकाने के लिए वह फ्रांस की यात्रा पर भी गए। अंत में वह स्टालब्रिज में ही रहने लगे। हालांकि ब्रायल की स्टालब्रिज में लंबे समय तक रहने की इच्छा नहीं थी, तब भी वह वहां लगभग छह साल तक रहे। शुरुआत में ब्रायल ने कुछ भक्तिपूर्ण लेखन किया। उन्होंने सेराफिक लव, द मार्टर्डम ऑफ थियोडोरा और अन्य धार्मिक रचनाओं के प्रारंभिक संस्करण की रचना की। इसके बाद ब्रायल फ्रांसिस बेकन से प्रेरित और सैम्युअल हार्टलिब के आसपास रहने वाले तकनीकी और यूटोपियाई लेखकों के एक संगठन के संपर्क में आए।

अक्टूबर 1646 में फ्रांस में अपने पुराने शिक्षक को लिखे गये एक पत्र में ब्रायल ने लिखा था : ''जहां तक मेरे अध्ययन की बात है मुझे उसे आगे जारी रखने का अवसर प्राप्त था, लेकिन टुकड़ों–टुकड़ों में ही, या अपने काम से फुरसत या अवसर मिलने पर ही मैं इसके लिए समय निकाल पाता था। मैंने छंद और गद्य

दोनों में छोटे निबंध लिखे ..... विभिन्न विषयों पर लापरवाहीपूर्ण लेखन में भी मैंने काफी तकलीफें उठायीं .... अपने नये दार्शनिक कॉलेज के सिद्धांतों के अनुरूप मैंने अपने को प्राकृतिक दर्शन, यांत्रिकी और कृषि कर्म जैसे अन्य मानविकी अध्ययन में लगाया।

जॉन वालिस

सेठ वार्ड

लगभग 1649 में ब्वायल की रुचि वैज्ञानिक प्रयोगों की तरफ हुई। व्यवस्थित परीक्षण से ब्वायल का परिचय सर्वप्रथम जॉर्ज स्टार्की के हाथों हुआ जिन्होंने आइरिनियस फिलोलेथेस के छद्म नाम से अत्यधिक लोकप्रिय क्रिसोपोएटिक निबंध लिखे। स्टार्की से ब्वायल ने हेल्मोंटियक रसायन की पूर्ण प्रायोगिक जानकारी प्राप्त की। यह एक ऐसी शाखा है जिसके अंतर्गत साधारण रासायनिक अध्ययन के सहारे 'महान रहस्य' जैसे कि अलखासा या सार्विक विलायक एवं पारस–पत्थर की खोज करने का उद्देश्य था।

क्रिस्टोफर रेन

इसके लिए एक भट्ठी की जरूरत होती है। हालांकि वे स्टालब्रिज में ऐसी कोई भट्ठी नहीं पा सके क्योंकि यह स्थान व्यापारी लोगों की गतिविधियों से काफी दूर था। अतः उन्होंने बाहर से एक भट्ठी मंगाई लेकिन जब यह उनके पास पहुंची तो पूरी तरह टूट चुकी थी। आखिरकार एक भट्ठी मिल गयी और ब्वायल अपना प्रयोग शुरू कर सके।

ब्वायल 1654 में आक्सफोर्ड चले गये। वहां वह कुछ डॉक्टरों और प्राकृतिक दार्शनिकों के संपर्क में आए जिन्होंने उनके प्राकृतिक दर्शन के अनुसंधान को प्रोत्साहित किया। यहां पर ब्वायल ने जॉन विल्किंस, जॉन वालिस, सेठ वार्ड और क्रिस्टोफर रेन से संपर्क किया। ऑक्सफोर्ड में ब्वायल ने सबसे पहले गैस यांत्रिकी पर कार्य किया उन्होंने राबर्ट हुक द्वारा अपने लिए बनाया गया एक वायु पंप प्राप्त किया। इस पंप का आविष्कार 1654 में ऑटो वॉन ग्यूरिक (1602–86) ने किया था। राबर्ट हुक के सहयोग से ब्वायल ने कई महत्वपूर्ण प्रयोग किए। उन्होंने यह दर्शाया कि ध्वनि के प्रसारण, श्वसन और दहन के लिए वायु का होना जरूरी है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि श्वसन और दहन में वायु का केवल एक हिस्सा ही उपयोग होता है। उन्होंने सबसे पहले यह दर्शाया कि गैलीलियो की यह मान्यता सही थी कि निर्वात में सभी वस्तुएं एक समान गति से गिरती हैं। गैस यांत्रिकी के अपने सबसे महत्वपूर्ण प्रयोग में उन्होंने एक 'यू' आकार की नली ली जिसका एक छोर छोटा और बंद था और दूसरा लंबा, खुला छोर था। इसमें उन्होंने पारा भर दिया। इस उपकरण की सहायता से वह छोटे छोर की ओर एक निश्चित आयतन की गैस का पृथक्करण कर सके। जब दोनों छोरों पर पारे का स्तर बराबर हो गया तो गैस वायुमंडलीय दाब में था। 'यू' आकार की नली के लंबे छोर की तरफ पारे की मात्रा बढ़ाकर ब्वायल इस दाब में वृद्धि कर सकते थे। और ऐसा करके ब्वायल ने यह देखा कि दाब में दो गुनी वृद्धि की जाए तो गैस का आयतन आधा हो जाता है, इसी प्रकार दाब में तीन गुनी वृद्धि करने पर आयतन एक तिहाई हो जाता है। वायु के संपीडन पर उनका कार्य 1660 में प्रकाशित हुआ। यह उनका पहला प्रमुख वैज्ञानिक कार्य था। इसका शीर्षक था – न्यू एक्सपेरिमेंट्स फिजिको–मेकैनिकल, टचिंग द स्प्रिंग ऑफ दि एयर एंड इट्स इफेक्ट्स। 1662 में प्रकाशित इस कार्य के दूसरे संस्करण में ब्वायल ने अपना प्रसिद्ध नियम प्रतिपादित किया कि किसी गैस का दाब उसके आयतन का व्युत्क्रमानुपाती होता है। यदि दाब बढ़ता है तो आयतन घटेगा और इसी प्रकार यदि आयतन बढ़ता है तो दाब घटेगा। ब्रिटेन और अमेरिका में इसे ब्वायल के नियम के रूप में जाना गया लेकिन फ्रांस में इसका श्रेय एडमी मैरियट (1620–84) को दिया गया जिन्होंने ब्वायल के नियम (1662) के समान ही एक नियम की खोज की थी।

जैसा कि हम जानते हैं ब्वायल का नियम सिर्फ आदर्श गैस के लिए ही लागू होता है और PV=K के रूप में लिखा जाता है। यहां K एक स्थिरांक है और P से दाब और V से आयतन प्रतिपादित होता है।

गॉटफ्राइड विल्हेम लेब्निज (1646–1716) ने क्रिश्चियन ह्यूजेंस से इस तथ्य पर अपना आश्चर्य व्यक्त किया कि अपने उत्तम और गहन प्रायोगिक प्रेक्षणों के आधार पर ब्वायल ने कोई सिद्धांत नहीं निर्मित किया। उन्होंने लिखा कि ब्वायल ''जिसने इतने अधिक उत्तम प्रयोग किए, इतने समय तक उन पर ध्यान केंद्रित करने के बावजूद रसायन विज्ञान का कोई सिद्धांत नहीं निर्मित कर सके। अपनी पुस्तक में भी और अपने सभी प्रेक्षणों से प्राप्त परिणामों के आधार पर उन्होंने केवल वही निष्कर्ष निकाले जो हम सब जाते हैं कि

राबर्ट ब्वायल के कुछ महत्वपूर्ण कार्य

1. न्यू एक्सपेरिमेंट्स फिजिको – मेकैनिकल, टचिंग द स्प्रिंग ऑफ एयर ऐंड इट्स इफेक्ट्स
2. सर्टेन फिजियोलॉजिकल एसेज
3. द स्केप्टिकल किमिस्ट
4. सम कंसिडरेशंस टचिंग द यूजफुलनेस ऑफ एक्सपेरिमेंटल नेचुरल फिलॉस्फी
5. दि ओरिजिन ऑफ फॉर्म्स ऐंड क्वालिटीज
6. दि एक्सीलेंसी ऑफ थियोलॉजी, कम्पेयर्ड विथ नेचुरल फिलॉस्फी
7. कंसिडरेशंस एबाउट दि एक्सीलेंसी ऐंड ग्राउंड्स ऑफ द मेकैनिकल हाइपोथिसिस
8. द फ्री एन्क्वायरी इंटू दि वल्गरली रिसीव्ड मोसन ऑफ नेचर
9. द डिस्कोर्स ऑफ थिंग्स एबव रीजन
10. डिस्क्वीजिशन एबाउट द फाइनल कॉजेज ऑफ नेचुरल थिंग्स
11. द क्रिश्चियन वर्च्युओसो
12. एक्सपेरिमेंटल हिस्ट्री ऑफ मिनरल वाटर्स (1685)
13. ऑफ द रींकसीलिएबुलनेस ऑफ स्पेसिफिक मेडिसिंस टू द कार्पसक्यूलर फिलास्फी (1685)
14. मेडिसिंस एक्सपेरिमेंट्स : ऑर ए कलेक्शन ऑफ च्वाइस रेमेडीज, 1692 (पास्थमस)
15. एक्सपेरिमेंट्स एंड कंसिडरेशन टचिंग कलर्स
16. हाइड्रोस्टेटिक पैराडॉक्सेज
17. एबाउट दि एक्सीलेंसी ऐंड ग्राउंड्स ऑफ द मेकैनिकल फिलॉस्फी

प्रत्येक चीज यांत्रिक रूप से घटित होती है। वह संभवतः बहुत अधिक अंतर्मुखी थे। उत्तम व्यक्तियों को हमारे लिए अपने अनुमान भी छोड़ जाने चाहिए। उनका यह चाहना गलत है कि उन्हें केवल वही सत्य छोड़ जाना चाहिए जो प्रमाणित है।

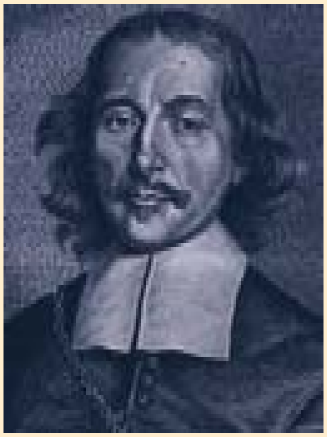
ओटो वॉन ग्यूरिक

ब्वायल ने स्केप्टिकल किमिस्ट (1661) में 'तत्व' शब्द को परिभाषित किया है : ''.....निश्चित मौलिक और साधारण अथवा पूर्णतः शुद्ध निकाय; जो किसी अन्य निकाय या एक दूसरे से मिलकर न बना हो वे पूर्णतः मिश्रित होते हैं और जिसमें कि वे अंतिम रूप से समाहित होते हैं। *स्केप्टिकल* किमिस्ट में बहुत से विचार रेने डेकार्टे (1596–1650) से लिये गये हैं। हालांकि, एक ओर व्याप्त मामले में ब्वायल बुनियादी रूप से डेकार्टे से सहमत थे। डेकार्टे निर्वात की धारणा में विश्वास नहीं करते थे। उनका मानना था कि सभी एक–दूसरे में प्रसारित होते हैं। लेकिन ब्वायल ने इस विचार को नकार दिया क्योंकि वह इसके लिए कोई प्रायोगिक प्रमाण नहीं पा सके। डेकार्टे की भांति ही ब्वायल्स कभी मानते थे कि प्राथमिक कण द्रवों में मुक्त रूप से और ठोसों में थोड़ी कम स्वतंत्रता से गति करते हैं।

चार्ल्स द्वितीय ने ब्वायल को कई सम्मान देने चाहे जिनमें एटन का प्रोवोस्ट पद तथा पीयर की उपाधि भी सम्मिलित थे, किन्तु ब्वायल ने उन्हें स्वीकार करने से इंकार कर दिया। लेकिन उन्हें ईस्ट इंडिया कंपनी के बोर्ड में नियुक्त किया गया और रॉयल कंपनी ऑफ माइंस का सदस्य बनाया गया। ऐसी जानकारी है कि ब्वायल ने औद्योगिक व चिकित्स्कीय संसाधनों की तलाश के लिए रॉयल कंपनी ऑफ माइंस के लिए खोज कार्य किया। 1662 में उन्हें आयरलैंड में एक किलेबंद एस्टेट प्रदान किया गया। ब्वायल ने इस स्टेट से प्राप्त आय को ईसाइयत के प्रचार

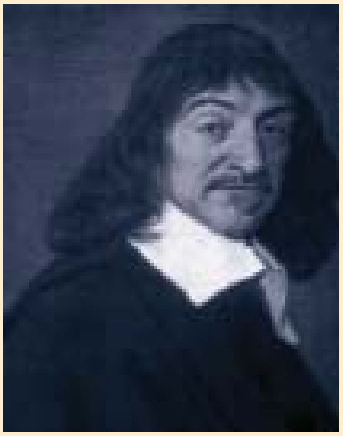
रेने डेकार्टे

और शिक्षा को आगे बढ़ाने में लगाया। उन्हें 1661 में न्यू इंग्लैंड में सोसायटी फॉर द प्रोपेगेशन ऑफ द गॉस्पल का गवर्नर नियुक्त किया गया। वह इस पद पर 1689 तक रहे।

30 दिसम्बर, 1691 को राबर्ट ब्वायल की लंदन में मृत्यु हो गयी। उन्हें सेंट–मार्टिल–इन–द–फिल्ड्स चर्च में उनकी बहन के बगल में दफनाया गया। लेकिन बाद में चर्च को ध्वस्त कर दिया गया और इस बात के कोई प्रमाण नहीं हैं कि उनके अवशेष कहां रखे गये है।

विस्तृत जानकारी के लिए पढ़ें

1. हंटर, एम, और डेविस, ई. बी. (ईडीएस). द वर्क्स ऑफ रॉबर्ट ब्वायल (14 खंड), लंदन : पिकरिंग ऍंड चैटो, 1999–2000
2. कैन्नी, एन. दि अपस्टार्ट अर्ल : ए स्टडी ऑफ द सोशल एंड मेंटल वर्ल्ड ऑफ रिचर्ड ब्वायल, 1566.1643, कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982
3. हंटर, एम. "अलकेमी, मैजिक ऍंड मोरलिज्म इन द थाट ऑफ राबर्ट ब्वायल", ब्रिटिश जर्नल फॉर द हिस्ट्री ऑफ साइस, 23 पी.पी. 387–410, 1990.
4. हंटर, एम (एडि.) रॉबर्ट ब्वायल रीकंसिडर्ड, कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994
5. प्रिंसिपी, एल, एम, द एस्पिरिंग एडेप्ट : रॉबर्ट ब्वायल ऍंड हिज अलकेमिकल क्वेस्ट. प्रिंसटन : प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस 1998
6. वोजसिक, जे रॉबर्ट ब्वायल ऍंड द लिमिट्स ऑफ रीज़ न्यूर्याक : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997
7. ए डिक्शनरी ऑफ साइंटिस्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1999
8. द कैम्ब्रिज डिक्शनरी ऑफ साइंटिस्ट्स. कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस 2002
9. चैम्बर्स बायोग्राफिकल डिक्शनरी – सेंटेनरी एडिशन चैम्बर्स हरप पब्लिशर्स लिमिटेड, 1997

अनुवादक : दिनेश अग्रहरि

◆◆◆

विश्व पुस्तक मेले में फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स पुरस्कार

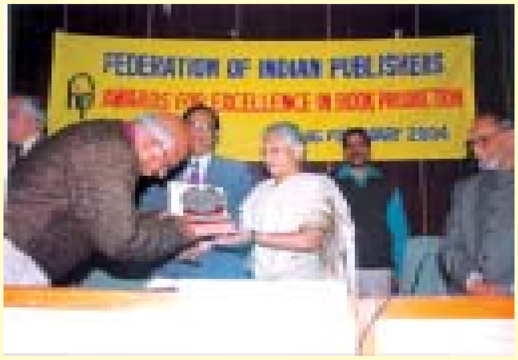

फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स ने 'जर्नल्स एण्ड हाउस मेगजीन्स (हिन्दी)' वर्ग में श्रेष्ठ प्रकाशन के लिए (वर्ष 2002–2003) विज्ञान प्रसार के द्विभाषी मासिक (हिन्दी+अंग्रेजी) पत्र 'ड्रीम 2047' को द्वितीय पुरस्कार दिया। 16 फरवरी 2004 को प्रगति मैदान में विश्व पुस्तक मेले के दौरान दिल्ली की माननीय मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित से, श्री वी.के. जोशी ने विज्ञान प्रसार की ओर से पुरस्कार ग्रहण किया। ड्रीम 2047 को यही पुरस्कार वर्ष 2001–2002 में अंग्रेजी वर्ग में प्राप्त हुआ था।

विज्ञान प्रसार के हिन्दी प्रकाशन 'खिले मातृत्व : गूंजे किलकारियां' (लेखक : यतीश अग्रवाल–रेखा अग्रवाल) को फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स ने विज्ञान/तकनीकी/चिकित्सा वर्ग की हिन्दी पुस्तकों के अन्तर्गत 'श्रेष्ठ प्रकाशन' के लिए (वर्ष 2002–2003) प्रथम पुरस्कार प्रदान किया। दिल्ली की माननीया मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित से, विश्व पुस्तक मेला, प्रगति मैदान में 16 फरवरी 2004 को आयोजित समारोह में डॉ. सुबोध महंती ने विज्ञान प्रसार की ओर से पुरस्कार ग्रहण किया।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

कैंसर विकिरण से होने वाले जोखिम का अनुमान

एक ब्रिटिश अध्ययन ने एक्स–रे से होने वाले कैंसर के खतरे का परिणाम निर्धारित किया है। ऐसा माना जाता है कि चिकित्सा एवं दंत स्कैन से होने वाले विकिरण के कारण विश्व के अनेक देशों में प्रतिवर्ष कैंसर के अनेकों मामले सामने आये हैं।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, यू.के. के एमी बेरिंगटन डी. गोनाल्जे, जिन्होंने अध्ययन को समन्वित किया, कहती हैं कि एक्स–रे के इस्तेमाल के लाभ अभी भी कैंसर जोखिम की बढ़ती क्षमता से काफी अधिक हैं। किन्तु यह जानना महत्वपूर्ण है कि ये खतरे क्या हैं, इसलिए चिकित्सकों द्वारा इस तकनीक के उपयोग के लाभ–हानि के बारे में बताया जाना चाहिए।

एक्स–रे और उनका कम्प्यूटरीकृत रूप सीटी स्कैन नियमित रूप से कैंसर की जांच और हड्डी टूटने का परीक्षण करने में इस्तेमाल किये जाते हैं। लेकिन विकिरण कोशिकाओं के माध्यम से प्रवेश कर सकता है और डीएनए को क्षतिग्रस्त कर सकता है। कुछ लोगों में, यह कैंसर शुरू कर सकता है।

खतरे को कम करने के लिए चिकित्सक निम्न मात्रा का इस्तेमाल करते हैं। लेकिन एक्स–रे अस्पतालों में आम है और एक बड़ी संख्या में लोग उनका इस्तेमाल करते हैं।

एक्स–रे के खतरे के परिणाम को निर्धारित करने के प्रयास पहले भी किये गये हैं। सर्वाधिक अद्यतन पूर्वानुमान 1981 में किया गया, जिसके तहत यह पाया गया कि संयुक्त राज्य में 0.5 प्रतिशत कैंसर मामले संभवतः एक्स–रे की वजह से होते हैं।

नये अध्ययन के अनुसार पता चला कि विश्व में लगभग 10 प्रतिशत कैंसर के मामले एक्स–रे की वजह से होते हैं।

स्रोत : Nature.com

जीएम के साथ जैव खाद्य की मिलावट

अप्रैल में प्रकाशित होने वाले एक अध्ययन के अनुसार, यूनाइटेड किंगडम में बिक्री के लिए रखे गये जैव खाद्य पदार्थों के एक विस्तृत रेंज में आनुवंशिक रूप से संबर्धित अवयव सम्मिलित हैं। इस रहस्योद्घाटन ने खाद्य पदार्थों को जैव एवं जीएम–मुक्त का प्रमाण देने वाले संगठनों, यथा–स्वायल एसोसिएशन को शीघ्रातिशीघ्र अपनी प्रक्रियाओं की समीक्षा करने के लिए प्रेरित किया है।

यूनिवर्सिटी ऑफ ग्लैमॉर्गन, पांटीप्रिड, वेल्यू के जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधानकर्ता मार्क पार्टरिज और डेनिस मर्फी द्वारा परीक्षण किये गये 25 जैव या स्वास्थ्य खाद्य उत्पादों में से दस में ट्रांसजेनिक सोया पाये गये। दस में से आठ पर या तो 'जैव' का लेबल लगा था, जो स्वायल एसोसिएशन नियमों के तहत ट्रांसजेनिक अवयवों की अनुपस्थिति का संकेत देता है, या स्पष्ट रूप से 'जीएम–मुक्त' लिखा था।

आयरलैण्ड और यूके में राष्ट्रीय खाद्य मानकों द्वारा किये गये प्रारंभिक परीक्षणों को सही ठहराते हुए यह अध्ययन संकेत करता है कि खाद्य पदार्थों के विस्तृत रेंज में संभवतः जीएम पदार्थों के अवशेष शामिल होते हैं।

जैविक एवं गैर–जैविक खाद्य पदार्थों दोनों में सोया एक अति लोकप्रिय अवयव है। एक विशिष्ट सुपर बाजार में 60 प्रतिशत से अधिक प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों में शाकाहारी सॉस और सोया कीमा सहित सोया सत्त पाये जाते हैं। जैव और स्वास्थ्य खाद्य दुकानों में सोया आटा तथा अपसंस्कृत सोयाबिन भी लोकप्रिय हैं। इसके अतिरिक्त जैव दुकानों पर जैव मांस निश्चित रूप से पशुओं से आते हैं, तथा बहुत से किसान भोजन के रूप में जैव सोया का इस्तेमाल करते हैं।

स्रोत : nature.com

हाइड्रोजन ईंधन को साफ कर सकते हैं पौधे

पौधों के पास वह कौशल होता है, जिससे वैज्ञानिक ईर्ष्या कर सकते हैं : प्रकाश संश्लेषण के माध्यम द्वारा जल को हाइड्रोजन और ऑक्सीजन विभाजित कर देने की क्षमता। औद्योगिक पैमाने पर इस कार्य का निष्पादन स्वच्छ हाइड्रोजन ईंधन

उत्पादित करने में किया जा सकता है। इस दिशा में, साइंस जर्नल में प्रकाशित अद्यतन निष्कर्ष लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। अनुसंधानकर्ता बताते हैं कि उन्होंने विस्तार से इस प्रक्रिया की रूपरेखा का अवलोकन किया है।

अध्ययन के सह–लेखक इम्पीरियल कॉलेज लंदन के जिम बारबर कहते हैं कि ''प्रकृति ने 2–5 बिलियन वर्ष पहले से ही बता रखा है कि किस प्रकार कुशल तरीके से सूर्य के प्रकाश का इस्तेमाल कर, जल को विघटित किया जा सकता है। जल–विघटन केन्द्र की संरचना के उद्घाटन द्वारा हम यह सुलझाने की शुरुआत कर सकते हैं कि कैसे ऊर्जा–कुशल तरीके से इस कार्य को सम्पन्न किया जाये।'' बारबर और उनके सहयोगियों ने पौधों में फोटोसिस्टम 2 कॉम्प्लेक्स के लिए आवश्यक उत्प्रेरक के उच्चतम रिजॉल्यूशन के चित्र प्राप्त करने के लिए एक्स–रे क्रिस्टलोग्राफी का इस्तेमाल किया, जो प्रकाश संश्लेषण को संभव बनाता है। वैज्ञानिकों ने *थर्मोसिनेकोकोकस* नामक एक पौध जीवाणु का विश्लेषण किया तथा यह निर्धारित किया कि कॉम्प्लेक्स में घन के रूप में व्यवस्थित चार मैंगनीज परमाणु, चार ऑक्सीजन परमाणु और एक कैल्सियम परमाणु समविष्ट होता है, जिसके साथ अति सक्रिय मैंगनीज परमाणु कोने में स्थित ऑक्सीजन से जुड़े होते हैं। दल के सदस्य इम्पीरियल कॉलेज तथा जापान विज्ञान व प्रौद्योगिकी निगम के सो इवाटा का कहना है, ''हमारी संरचना महत्वपूर्ण एमीनो अम्लों, जो प्रोटीन के बिल्डिंग ब्लॉक होते हैं, की स्थिति का भी खुलासा करती है, जो अभिक्रिया केन्द्र में सह–कारक कैसे शामिल होते हैं – का विस्तृत विवरण प्रदान करता है।''

स्रोत : साइंटिफिक अमेरिकन, फरवरी 2004

क्लोनीकृत मानव भ्रूण से स्टेम कोशिकाओं का उत्पादन

दक्षिण कोरिया में वैज्ञानिकों ने क्लोनीकृत मानव भ्रूणों से स्टेम कोशिकाएं प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। जर्नल *साइंस* में प्रकाशित रिपोर्ट में इस कार्य की चर्चा की गयी है, जिसमें करीब 100 कोशिकाओं के 30 भ्रूणों को सृजित किया गया तथा स्टेम कोशिकाएं पैदा करने के लिए उनका इस्तेमाल किया गया जिसको बाद में ऊतक के एक प्रकार में परिवर्तित किया गया। ये निष्कर्ष तथाकथित

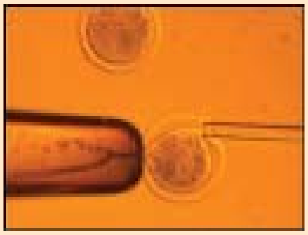

रोगनिवारक क्लोनिंग के माध्यम से रोग निदान की आशा जगाते हैं, लेकिन निश्चित रूप से इससे नैतिक बहस की शुरुआत हो जाएगी।

सफलतापूर्वक क्लोन किये गये पशुओं की सूची में भेंड, चूहे, घोड़े और बिल्लियां शामिल हैं। लेकिन नरवानर गण मुश्किल साबित हुए हैं। उक्त नये कार्य के तहत, वू सुक हवांग, सियोल नेशनल यूनिवर्सिटी के नेतृत्व में शोधकर्ताओं के एक दल ने 16 ऐसे अवैतनिक स्वयंसेवकों से 242 अंडे इकट्ठे किये, जो यह जानते थे कि उनके अंडे वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए इस्तेमाल किये जाएंगे। वैज्ञानिकों ने उसी डोनर के एक अंडे में, जिसके नाभिक निकाल दिया गया था, एक दैहिक, या अप्रजनिक, कोशिका का नाभिक स्थानांतरित किया। अनुसंधानकर्ताओं ने अंडे के घटकों को निकालने के लिए एक थोड़े भिन्न तकनीक का इस्तेमाल किया – आम रूप से इस्तेमाल किये जाने वाली चूषण विधि के बजाय बर्हिबेधन विधि का उपयोग – जिसने सावधानीपूर्वक समय ओर दाता अंडों की ताजगी दोनों के साथ उनकी सफलता में सहयोग किया।

स्रोत : न्यू साइंटिफिक, फरवरी 2004

संकलन : कपिल त्रिपाठी

करी पत्ता

एक शुद्ध भारतीय मसाला

❑ टी.वी. वेंकटेश्वरन
e-mail: tvv123@rediffmail.com

तमिल में *करुवेप्पिलई (या करुवेपिला)*, बंगाली में *बरसुंगा* और हिन्दी में *मीठा नीम (या करी पत्ता, कटनीम)* के नाम से जाना वाला करी पत्ता का वानस्पतिक नाम *मुर्रयाकोईनिगी स्प्रेंग* है। भारत का मूल निवासी, करी पौधा हिमालय के उच्च स्तरों सहित भारतीय उपमहाद्वीप में प्रायः हर जगह जंगली रूप से पाया जाता है। इस पौधे का उल्लेख प्राचीन तमिल अभिनव संगम साहित्य (ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी) में मिलता है, जिनमें इस पौधे को *'कंचका नरुमुरी'* कहा गया है। सामान्यतः बाह्य हिमालय में, रावी नदी के पूर्वी भाग की ओर, 5,000 फीट की ऊंचाई तक, असम, चित्तगांग, ऊपरी और निचले बर्मा में पाया जाने वाला यह पौधा प्रायद्वीपीय भारत के सदाबहार एवं पर्णपाती जंगलों में भी झाड़–झंखाड़ के रूप में पाया जाता है।

तमिल में *करी* का वास्तविक अर्थ 'रसा' होता है; *वेपिलाई* नीम पत्ते को कहते हैं; इसका तात्पर्य यह है कि परम्परागत रूप से इस पौधे को नीम का एक प्रकार माना गया है, लेकिन यह 'करी' बनाने में उपयोगी होता है। अंग्रेजों ने इसका गलत अर्थ लगाया, उन्होंने 'करी' को मसालेदार/मसाला समझा (क्योंकि रसा प्रायः मसालेदार होता है और उसे मसाला कहा जाता है) तथा इस पौधे का नाम करी लीफ/प्लांट रखा; और यह नाम प्रचलित हो गया। हालांकि नाम से इसके नीम के पेड़ से संबंधित होने का पता चलता है, लेकिन वास्तव में करी पत्ता पौधा साइट्रस परिवार (रुटैसिए), यथा–नींबू, का एक उष्णकटिबंधी पेड़ है।

चित्र 1 : पौधा, फूल और कोमल पत्ती

पत्ते पौधे का लाभदायक भाग होते हैं। लम्बे पतले पर्णकों के ऊपर का भाग गहरा हरा और अंदर का हिस्सा पीला होता है। चूंकि सूखने के बाद इनकी स्वादिष्ट सुगंध समाप्त हो जाती है, इसलिए इनको ताजा ही प्राप्त करना आवश्यक होता है; सूखे पत्ते का शायद ही कोई इस्तेमाल होता है। इन पत्तों को कूटने या रगड़ने पर एक तीक्ष्ण, गर्म करी सुगंध निकलती है। इसकी संवेदी गुणवत्ता संतरे जैसी, ताजी एवं प्रीतिकर होती है। परम्परागत रूप से *'स्वाद के छह प्रकारों'* के अंतर्गत करी पत्ते के स्वाद को तीक्ष्ण के रूप में वर्गीकृत किया गया है। *'एकदम करी पौधे की कोमल पत्तियों जैसी'* तमिल में कहा जाने वाला एक मुहावरा है जिसको करी पत्ता पौधे की कोमल पत्तियों की सुकुमारता जैसी वैशिष्ट्य एवं दुर्लभता के लिए इस्तेमाल किया जाता है। दूसरी ओर, चूंकि अधिकांश लोग पत्तियों को परोसने के दौरान बाहर निकाल देते हैं, हालांकि स्वाद और किसी सुअवसर के लिए ही इन पत्तियों का इस्तेमाल किया जाता है, तो भी *'एकदम करी पौधा जैसा'* नामक मुहावरे का तात्पर्य एकदम विपरीत होता है– लापरवाह एवं संवेदनाहीन रवैया।

पाकशालीय इस्तेमाल

करी पता एक लोकप्रिय पत्ती वाला मसाला है, जिसका भारतीय रसोईघर में प्रामाणिक स्वाद एवं विशिष्ट सुगंध के लिए इस्तेमाल प्रायः प्रतिदिन उपलब्ध रहे तो ताजा नहीं तो लम्बी अवधि तक के लिए रखे गये संरक्षित, सूखे या हिमशीतित के रूप में किया जाता है। भारतीय पाकशास्त्र में करी पत्तों का वही महत्त्व है जो पश्चिमी विश्व में बे पत्तों का है। वास्तव में, संगम साहित्य *पेरुम्पानाट्रपडई* में आम का आचार बनाने में इसके इस्तेमाल का उल्लेख किया गया है, इससे इसके कम से कम 2000 वर्ष के प्राचीन इतिहास का संकेत मिलता है। सुगंधमय एवं स्वादिष्ट होने के कारण ये भोजन के स्वाद को प्रभावशाली रूप से बदल देते हैं। इसको तेल में कड़कड़ाकर इस्तेमाल करिये या पैन में भूनकर या कच्चे ही सम्मिश्रित कर, ये बहु–उपयोगी पत्ते काफी प्रभावकारी होते हैं। भारत में, इनका इस्तेमाल औषधीय उद्देश्य के लिए भी किया जाता है। मिचली रोकने और पेट की गड़बड़ी को दूर करने में इसकी प्रभावोत्पादकता प्रायः अद्वितीय है।

हालांकि करी पत्ता में सगंध तेल की उपस्थिति के कारण इसकी विशिष्ट सुगंध के लिए इसका काफी कम मात्रा में इस्तेमाल किया जाता है, इसके बावजूद इसके पोषक मूल्य एवं प्रकार्यात्मक विशेषताओं ने शोधकर्त्ताओं का ध्यान अपनी तरफ आकृष्ट किया है। इसके उच्च प्रतिऑक्सीकारक एवं प्रति–जल–जंतु विज्ञान संबंधी क्षमता के बारे में पता चलने के बाद से करी पत्ते के वृहत्तर इस्तेमाल के प्रति लोगों की रुचियां बढ़ गयी हैं। ऐसा बताया गया है कि करी पत्ते अल्फा–टोकोफेरॉल, बीटा–कैरोटीन और ल्यूटीन के स्रोत हैं।

परम्परागत रूप से करी पत्तों का इस्तेमाल दो तरीकों से होता है–'तड़का' के रूप में भोजन में अंतिम छोंक लगाकर अथवा खाना बनाने की शुरुआत में आधार के रूप में। भारतीय रसोईघरों में, करी पत्ते ताजे इस्तेमाल किये जाते हैं; कुछ भोजन के लिए पत्तों को ओवन में सुखा दिया जाता है या खाना खाने के तुरंत पहले सेंककर अथवा प्रायः भोजन बनाने के बाद उसको अलंकृत कर इस्तेमाल किया जाता है। एक अन्य आम तरीका मक्खन या तेल में भूनकर–'तड़का' लगाने का है। चूंकि दक्षिण भारतीय रसोईघर मुख्यतः शाकाहारी होता है, करी पत्ता मांसाहारी भोजन में शायद ही डाला जाता है; इसका मुख्य रूप से *रसम* (पतला मसूर) या *साम्भर* (सब्जी रसा) में इस्तेमाल होता है। मुलायम बनावट की वजह से उसे खाना परोसने के दौरान कभी निकाला नहीं जाता, किन्तु बिना किसी हानि के इसे खाया जा सकता है। हालांकि श्रीलंका और केरल में, स्वादिष्ट चिकेन और गोमांस करी को करी पत्तों से स्वादिष्ट बनाया जाता है।

हालांकि दक्षिण भारत और श्रीलंका में करी पत्तों का गहन इस्तेमाल किया जाता है (और ये प्रामाणिक स्वाद के लिए बहुत आवश्यक होते हैं), लेकिन उत्तर भारत में भी इसकी महत्ता कम नहीं है। दक्षिण भारतीय प्रवासियों के साथ करी पत्ता मलयेशिया, दक्षिण अफ्रीका और रियूनियन आइलैण्ड पहुंचा। भारतीय प्रभाव क्षेत्र के बाहर, ये मुश्किल से ही पाये जाते हैं।

प्रमुख घटक

ताजे पत्तों में सगंध तेल प्रचुरता में पाया जाता है, किन्तु सही मात्रा, ताजगी और आनुवंशिक नस्ल के अलावा निष्कर्षण तकनीक पर भी निर्भर करती है। विशिष्ट आंकड़े 0.5 से 2.7 प्रतिशत तक आते हैं। श्रीलंका के करी पत्तों में निम्नलिखित सुगंध घटकों की पहचान की गयी है (कोष्ठक के अंदर प्रति किलोग्राम ताजे पत्तों में से 1 मिलीग्राम घटक के अनुपात में दिये गये हैं): β–कैरियोफिलेन (2.6 पीपीएम), β–गुरजुनेन (1.9), β–एलेमिन (0.6), β–फेलैन्ड्रीन (0.5), β–थूजेन (0.4), α–सेलिनीन (0.3), β–बिसाबोलिन (0.3), इसके अलावा

शेष पृष्ठ ... 17 पर जारी

मेमोरी मंत्र

बेहतर याददाश्त के आसान टिप्स

❑ डॉ. यतीश अग्रवाल
e-mail: dryatish@yahoo.com

काजगी बादाम से लेकर मेमोरी प्लस तक, ऐसी दसियों बनावटी औषधियां हैं जो आपकी बेहतर याददाश्त के लिए वादा करती हैं। काश! यदि चीजें इतनी आसान होतीं तो हममे से हर कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति होता।

स्मृति प्ररोह, या भुलक्कड़पन के क्षण से हम सभी ग्रसित होते हैं। प्रायः कोई नाम हमारी जबान पर होता है लेकिन हम उसे बताने में असफल रहते हैं। यह वैसा ही है जैसा कि हम सर्वाधिक उपयुक्त शब्द याद करने का प्रयत्न करते हों और उसमें असफल रहते हों। इस प्रकार की स्थितियां हमेशा हमारे सामने 36 खड़ी होती हैं और हम अचरज में पड़ जाते हैं कि आखिर कैसे हम अपनी याददाश्त में सुधार करें।

कुछ साधारण तरीके सीखने के पहले आपको यह अवश्य जानना चाहिए कि प्रकृति जननी ने ऐसी योजना क्यों बनायी। वास्तव में, यदि आप कुछ और अधिक सोचें तो आप शीघ्र ही अनुभव करेंगे कि अपूर्ण मानव स्मृति प्रच्छन्न रूप से एक वरदान ही है। ईमानदारी से कहा जाय तो याददाश्त के प्रभावकारी होने के लिए उसका त्रुटिपूर्ण होना अति आवश्यक हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो जितनी सूचनाएं हम अपने मस्तिष्क में अभिग्रहीत करते हैं उनसे हम पागल हो जाते। हमारा मस्तिष्क तब बेकार बातों का जमावड़ा हो जाता। इसलिए अच्छाई इसी में है कि हम अपने काम की चीजें याद रखने में समर्थ बने रहें। इसके लिए यहां कुछ आसान तरीके या टिप्स दिए जा रहे हैं :

याद रखें, कठोर परिश्रम का कोई विकल्प नहीं होता : यदि आपको किसी याददाश्त परीक्षण का सामना करना पड़े, तो पूरी तरह तैयार होकर जाएं। आप केवल अपनी रिमोट मेमोरी से जवाब देने पर निर्भर न बनाएं। सक्रियता के साथ चीजों को दोहराएं। आप इस प्रकार योजना बनाएं और उस पर काम करें ताकि सक्रियता के साथ आप उसे दोहरा सकें। किसी पाठ को एक बार पढ़ें, पुनः 24 घंटे के अंदर उसे पढ़ें और फिर एक सप्ताह से लेकर 10 दिनों के भीतर उसका अध्ययन करें, इससे वह पाठ हमेशा के लिए याद हो जाएगा और आपके याददाश्त बैंक में अच्छी तरह से सुरक्षित हो जाएगा।

पाठ को लिखें, उन्हें जोर से पढ़ें, स्वयं को सुनाएं, और एक रूपरेखा तैयार करें – क्योंकि ये सभी आपकी सहायता करते हैं। महत्वपूर्ण पंक्तियों एवं अनुच्छेदों को चिन्हित करें। जहां आपको काम करने की ज्यादा आवश्यकता हो वहां स्वयं ही अभ्यास परीक्षण करें। आप अपना परीक्षण करने के लिए पुनरीक्षण सहायकों का भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

अवलोकनकर्ता बनें : अवलोकन का तात्पर्य है विवरण पर पूर्णतः ध्यान देना और उसे आत्मसात करना। यह एक कौशल है जिसमें कुछ व्यक्ति बड़े कुशल होते हैं। उदाहरण के लिए, आपने 500 रुपए के नोट कई बार अवश्य देखे होंगे, किन्तु क्या आपको याद है कि उसमें पीछे कौन–सा चित्र बना है? जब तक आप यह नहीं जानते कि गांधी जी दांडी यात्रा में अपने साथी नागरिकों का नेतृत्व कर रहे हैं, तब तक आप अपने अवलोकन कौशल को नहीं सुधार सकते। नियम यह है : उन चीजों का मानसिक चित्र बनाना सीखें जो आपके लिए महत्वपूर्ण हों।

स्मृति सूत्र बनाएं और उसे तुक बनाकर सोचें : मुश्किल से याद आने वाले तथ्यों और जटिल एवं अधिक विस्तृत सूचनाओं के लिए स्मृति सूत्र या तुकबंदी बनाएं। इससे काफी सहायता मिलेगी। लगभग 25 वर्ष पहले चिकित्सा विद्यालय में बहुत–सी जो बातें मैंने सीखी थीं वे आज भी मेरी स्मृति से चिपकी हुई हैं, क्योंकि मेरा एक मित्र कुछ दिलचस्प स्मृति सूत्र विकसित करने में माहिर था। आप भी ऐसी कोशिश कर सकते हैं। यह हर समय जादू की तरह काम करता है।

चारों ओर के बारे में सोचें : अपनी याददाश्त मशीनरी में तेल डालने और उसे काम करने देने के लिए, किसी विषय के आसपास के बारे में जितना आप जानते हैं उसे जितना ज्यादा संभव हो फिर से संगठित करें, और तब यह संभव है कि भूली हुई बात आपके दिमाग में एक फ्लैश की तरह वापस कौंधे। जितना अधिक आप संयोजन बताते हैं उतना ही अधिक सही उत्तर याद आने की संभावना होती है।

घटनाओं को याद रखने के लिए मार्कर का इस्तेमाल करें : काफी पहले आपके साथ घटी घटनाएं अन्य घटनाओं से अलग घटी नहीं होंगी। उनके बारे में सोचिए और आसानी से वर्ष और उस घटना से संबंधित अन्य विवरण आपको अचानक याद आ जाते हैं। उदाहरण के लिए, मुझे उस वर्ष को याद करने की जरूरत पडी जब हम मनाली गये थे, मैंने कोशिश की लेकिन वह वर्ष याद नहीं आया। किन्तु जब मैंने गहराई से सोचा तो सहसा याद आया कि यह वह वर्ष था जब पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या की गयी थी। शीघ्र ही उत्तर पता चल गया : 1984। यह वह तथ्य था जिसे आसानी से पता किया जा सकता था और यहां तक कि यदि मेरा मस्तिष्क मुझे असफल भी कर देता, तब भी मैं किसी सामान्य ज्ञान की संदर्भ पुस्तक में इसे देख लेता। कई बार इस तरह का सहसंबंध स्थापित करना आपके दिमाग को सही दिशा में ले जा सकता है और भूतकाल में घटी घटनाओं को याद करने में आपकी सहायता कर सकता है।

एक सूची बनाएं : जिसको आपको याद रखने की आवश्यकता हो उसको कागज के एक टुकड़े पर संक्षेप में लिख लीजिए। यह सूचना आपकी याददाश्त के लिए आपके मस्तिष्क को स्वतंत्र कर देती है। आपकी लघु अवधि की याददाश्त जिसकी संग्रह क्षमता सीमित होती है, इसके बाद दबाव महसूस नहीं करेगी।

दिमाग वाले खेल खेलें : शब्द – पहेली हल करना, दिमाग के खेल में गहराई से संलग्न होना तथा शब्द बनाने के खेल, शतरंज एवं ताश जैसे खेल खेलना अपनी याददाश्त को तीक्ष्ण करने के लिए उत्कृष्ट तरकीबें हैं। इनके लाभ क्रमिक एवं बारीक होंगे और आप उस खेल का अवश्य चुनाव करें जिसमें आपको ज्यादा मजा आए। लेकिन आप उसे अच्छी तरह खेलें और जीतने के लिए खेलें।

पढ़ें, पढ़ें और पढ़ें : यदि आप अपने को शब्दों को टटोलते हुए पाएं और ऐसा यदि आपके सथ हमेशा घटित हो, तो जितना संभव हो अधिक से अधिक पढ़ें। वैसी चीजें पढ़ें जो अच्छी एवं आनंददायक हों और शीघ्र ही आप पाएंगे कि शब्द अब धाराप्रवाह आ रहे हैं। यह एक समाधान है जिसको स्वयं मैंने सफलता के साथ आजमाया है। आप भी इसको इस्तेमाल कर सकते हैं।

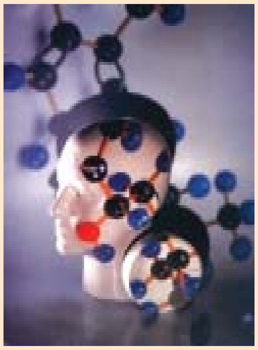

अल्कोहल एवं मादक पदार्थों को 'न' कहें : यदि आप अत्यधिक अल्कोहल का उपभोग करते हैं या मादक पदार्थों का सेवन करते हैं, तो आप अपना ही अनिष्ट कर रहे होते हैं। ये आपको भुलक्कड़ बनाती हैं। यहां तक कि तथाकथित कार्यक्षमता बढ़ाने वाली और उत्तेजित रखने वाली औषधियां भी गलत प्रभाव छोड़ती हैं। ये केवल आपको समय एवं क्षमता के बारे में गलत बोध कराती हैं। इसलिए इनसे दूर रहें।

ध्यान लगाएं : ध्यान मस्तिष्क की एकाग्रता को बढ़ाता है और शांति प्रदान करता है। जब आप स्थगित चेतना की स्थिति में प्रवेश करते हैं तब आप अपने मस्तिष्क को मुश्किल से अर्जित आराम की अनुमति देकर उसके कार्यभार से स्वतंत्र छोड़ देते हैं। इसे जारी रखें और

प्रयत्न करते रहें। इसमें समय लग सकता है और मुश्किल भी जान पड़ता है, विशेषकर प्रारंभिक अवस्था में जब इसे आप समझने की प्रक्रिया में हों। हालांकि एक योग प्रशिक्षक की सहायता से इसमें सफल होने में ज्यादा समय नहीं लगेगा।

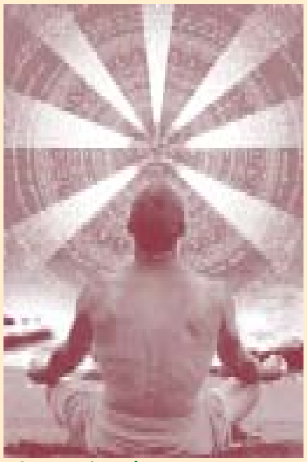

शांत बने रहें : तनाव, व्यग्रता एवं निराशा याददाश्त को बुरी तरह छिन्न–भिन्न कर सकते हैं। सिर्फ इसी के कारण बहुत से मेधावी छात्र परीक्षा में खराब प्रदर्शन करते हैं। आप हमेशा शांत बने रहें और इससे आप बढ़िया करेंगे। यदि आप चिन्तित रहते हों तो योग, गहरी सांस लेने वाले व्यायाम, तेज गति से टहलने और विश्राम करने का प्रयत्न करें।

स्वस्थ शरीर में एक स्वस्थ मन का निवास होता है : यदि आप सप्ताह में चार से पांच बार वायुजीवी व्यायाम करते हैं, तो इस बात की काफी अच्छी संभावना होती है कि आप याददाश्त परीक्षण (मेमोरी टेस्ट) में उस व्यक्ति को हरा देंगे जो कोई भी शारीरिक व्यायाम नहीं करता है। यदि आप नियमित रूप से शारीरिक व्यायाम नहीं करते हैं, तो तुरंत ही आप अपना यह सुस्त तरीका बदलें। व्यायाम मस्तिष्क के लिए एक आश्चर्यजनक टॉनिक है। यह मस्तिष्क तक रक्त संचार को बेहतर करता है, जो अपने आप परिवर्द्धित सोच एवं याददाश्त में परिवर्तित हो जाता है।

संतुलित भोजन करें : अनुसंधान यह दिखाते हैं कि विटामिन से भरपूर संतुलित भोजन आपकी याददाश्त, शब्द प्रवाह और पुनःस्मरण की क्षमता में अभिवृद्धि करता है। बी कॉम्प्लेक्स वर्ग के विटामिन, विशेषकर नियासीन एवं बीटा–कैरोटिन ओर विटामिन 'ए' के सेवन की विशेष रूप से सलाह दी जाती है।

सकरात्मक सोचें एवं उच्च लक्ष्य रखें : आप यह कभी मत सोचें कि आप बेहतर करने नहीं जा रहे हैं। सकारात्मक सोचें और शत–प्रतिशत प्रयास करें। अंततः आप 90 प्रतिशत अंक पा ही जाएंगे, और वह बुरा नहीं है! किन्तु कुछ और प्रयत्न करें, आप अपना सम्पूर्ण लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे।

अनुवादक : अनिल कुमार द्विवेदी

करी पत्ता... पृष्ठ 15 का शेष

लाइमोनीन, β–ट्रांस–ओसिमीन और β–कैडिनीन (0.2 पीपीएम)। नये शोध ने करी पत्तों के सगंध तेल के संघटन में काफी परिवर्तनशीलता दिखायी है। उत्तर भारतीय पौधों में मोनोटरपिन (β–फेलैन्ड्रीन, α–पाइनीन, β– पाइनीन) की अधिकता होती है, जबकि रिपोर्ट यह सुझाव देती है कि दक्षिण भारतीय नमूनों में सेस्क्वीटरपीन की प्रबलता पायी जाती हैः β–कैरियोफिलीन, एरोमाडेन्ड्रीन, α–सेलिनेन। इस पौधे में मुर्रयासिनीन नामक क्षाराभ भी पाया जाता है।

वनस्पतिशास्त्र

करी पत्ता छोटे पर्णपाती करी पत्ता पेड़, या 'मुर्रया' से आता है, जो दक्षिण एशिया का निवासी है। इसमें एनिस और साइट्रस की अधिछवि के साथ तीक्ष्ण करी सुगंध होता है। यह लगभग 2.5 मीटर ऊंचाई की एक छोटी फैलने वाली झाड़ी है; इसका मुख्य तना गहरे हरे रंग से लेकर भूरा तक होता है, जिस पर काफी छोटे–छोटे धब्बे होते हैं; इसके छिलके को अनुदैर्घ्य रूप से छीला जा सकता है, जिसके अंदर सफेद लकड़ी दिखती है; मुख्य तने की परिधि लगभग 16 सेंटीमीटर होती है।

चित्र 2 : करी पत्ता

पत्तों में अनुपर्णी, द्विपिच्छकीय यौगिक 30 सेंटीमीटर लम्बा, प्रत्येक में 24 पर्णिकाएं, जालिका रूपी आखेटन; पर्णिकाएं, भालाकार पत्तियां, 4.9 सेंमी लम्बी, 1.8 सेंमी चौड़ी और पर्णवृंत 0.5 मंद सुगंध वाले, डंठलदार, पूर्ण, सहपत्र रहित, नियमित, एक्टिनोमॉर्फिक, पंचभागी, अधोजाय होते हैं तथा पूरी तरह से खिले फूल का औसत व्यास 1.12 सेंमी होता है; पुष्पण, एक अंतस्थ नव प्ररोह, प्रत्येक में 60 से 90 फूल खिलते हैं; बाह्यदल पुंज, 5–पिंडक वाला, अपाती, जायांगघर, हरा; दल पुंज, सफेल, पृथक् दलीय, जायांगधर, 5 पंखुरियों वाला; भालाकार पत्ती, लम्बाई 5 मिमी; पुमंग, बहुपुंकेसरी, जायांगधर, 10 पुंकेसर वाला, पुष्प लग्न, प्रत्येक पांच वृत्तों में व्यवस्थित; लघु पुंकेसर, 4 मिमी लम्बा जबकि सबसे लम्बा 5 से 6 मिमी; गाइनोइसियम, 5 से 6 मिमी लम्बा; वर्तिकाग्र, चमकीला, चिपचिपा, वर्त्तिका, छोटा; अंडाशय, उत्कृष्ट। फल गोल से लेकर अंडाकार होते हैं, 1.4 से 1.6 सेंमी लम्बा, व्यास 1 से 1.2 सेंमी; पूरी तरह से पके फल की सतह काली के साथ काफी चमकीली होती है; लुगदी, विस्टारिया नीला; प्रत्येक गुच्छे में फलों की संख्या 32 से लेकर 80 तक परिवर्तित होती रहती है। प्रत्येक फल में मात्र एक बीज होता है जिसकी लम्बाई 11 मिमी, व्यास 8 मिमी और रंग पालक जैसा हरा होता है।

औषधीय इस्तेमाल

चीन और अन्य एशियाई देशों में लोक औषधि की तरह करी पत्ते का इस्तेमाल एक दर्दनिवारक, स्तंभक, प्रतिरक्तातिसारी, प्रतिऑक्सीकारक, ज्वर दूर करने वाली औषधि, हाइपोलिपिडेमिक, हाइपग्लीसेमिक के रूप में, दृष्टि में सुधार करने के लिए, रतौंधी के उपचार के रूप में और प्रजनन के विनियमन के लिए किया जाता है। करी पत्तों के वर्णित पोषक मूल्य ने तमिलनाडु सरकार को आर्थिक रूप से कमजोर बच्चों को दिये जाने वाले दोपहर के भोजन के साथ एक सप्ताह में पांच दिनों के लिए दो ग्राम का या तो करी पत्ता पाउडर या ड्रमस्टिक पत्ता पाउडर को शामिल करने को प्रोत्साहित किया, इस आशा के साथ कि इसके दोपहर के भोजन में शामिल होने से 3 से 5 वर्ष के बीच के बच्चों में विटामिन 'ए' की कमी को दूर करने में सहायता मिलेगी।

मुर्रया कोईनिगी (एल.) स्प्रेंग की पत्तियों, छाल एवं जड़ों का इस्तेमाल शक्तिवर्धक एवं क्षुधावर्धक औषधि के रूप में किया जाता है। इसकी छाल और जड़ों को एक उत्तेजक के रूप में चिकित्सकों द्वारा इस्तेमाल किया जाता है। फोड़े–फुंसियों और जहरीले पशुओं के काटने के इलाज के लिए बाह्य रूप से भी इसका उपयोग किया जाता है। अतिसार के इलाज के लिए हरे पत्ते को कच्चा खाया जाता है तथा धुले पत्तों का अर्क उल्टी को रोकता है। करी पत्ता पौधे की पत्तियों और बीजों में एक तीक्ष्ण ओडिफेरस तेल होता है। इस तेल के रासायनिक परीक्षण से यह पता चला है कि यह सगंध तेल एक मजबूत प्रतिजैविक एवं प्रतिकवक गतिविधि को प्रदर्शित करता है। मुर्रया कोईनिगी स्प्रेंग के विशुद्ध अर्क के विश्लेषण से महत्त्वपूर्ण एमाइलेज निरोधी गतिविधि का संकेत मिलता है। प्रायोगिक पशु के रूप में चूहों का इस्तेमाल कर कार्बोहाइड्रेट उत्परिवर्तन पर करी पत्ते के प्रभाव का अध्ययन किया गया तथा महत्त्वपूर्ण हाइपोग्लिसेमिक क्रिया का अवलोकन किया गया और हेपाटिक ग्लाइकोजेन एवं ग्लाइकोजेनेसिस के केन्द्रीकरण में वृद्धि पायी गयी।

अनुवादकः अनिल कुमार द्विवेदी

•••

पहियों पर विज्ञान प्रदर्शनी – विज्ञान रेल

विज्ञान रेल ने फरवरी 2004 में बिहार, पश्चिमी बंगाल, असम और नागालैंड राज्यों की यात्रा 29 जनवरी से 26 फरवरी 2004तक की और वह चार स्थानों पर रुकी – सोनपुर, मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर और बरौनी।

सोनपुर में विज्ञान रेल 29 जनवरी 2004 को रुकी। इसका औपचारिक उद्घाटन डिवीज़नल रेलवे मैनेजर श्री नीरज कुमार ने किया। सोनपुर और आसपास के क्षेत्र के बहुत से स्कूली बच्चों ने विज्ञान रेल देखी। उस एक दिन में करीब आठ हजार लोगों ने प्रदर्शनी देखी।

अलीपुरदुआर जंक्शन, असम में लम्बी लाइन में खड़े स्कूली बच्चे

विज्ञान रेल का अगला पड़ाव उत्तरी बिहार में मुज़फ्फरपुर में 30 जनवरी से 01 फरवरी 2004 तक था। वहां जिलाधिकारी श्री अमृतलाल मीना ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। डॉ. निहार रंजन सिंह, उपकुलपति, डॉ.बी.आर. अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, मुज़फ्फरपुर ने भी प्रदर्शनी देखी और उन्होंने इस प्रयास की बहुत सराहना की। कुल 54,000 दर्शकों ने मुज़फ्फरपुर में प्रदर्शनी का अवलोकन किया।

समस्तीपुर में विज्ञान रेल प्रदर्शनी 2 से 4 फरवरी 2004 तक रुकी। समस्तीपुर में प्रदर्शनी का उद्घाटन डिवीजनल रेलवे मैनेजर श्री अग्रवाल ने किया। जिलाधिकारी श्री लाल भी प्रदर्शनी देखने पधारे। कुल तीन दिनों में समस्तीपुर के करीब 55,000 छात्रों एवं अन्य दर्शकों ने प्रदर्शनी देखी।

बरौनी में विज्ञान रेल 5 से 7 फरवरी 2004 तक रुकी। वहां 5 फरवरी 2004 को प्रदर्शनी का उद्घाटन असिस्टेंट जी.एफ. (एच आर) बरौनी रिफाइनरी ने किया। इस अवसर पर पूर्व मध्य रलवे के क्षेत्रीय मैनेजर श्री असगर अली भी उपस्थित थे। लगभग 16,000 दर्शकों के औसत से करीब 50,000 लोगों ने तीन दिनों में प्रदर्शनी देखी।

पहियों पर विज्ञान प्रदर्शनी रेल बिहार में अपनी यात्रा पूरी करके उत्तरी बंगाल में 7 फरवरी 2004 को पहुंची। सिलीगुड़ी जंक्शन में विज्ञान रेल का उद्घाटन नार्थ बंगाल यूनिवर्सिटी के उपकुलपति प्रो. पी.के. साहा ने किया। इस अवसर पर एडीआरएम श्री एस.एन. सिंह और एस.डी.एम. श्री बी. लाम्बा और एरिया ट्रेफिक मैनेजर – रेलवे श्री करन सिंह भी उपस्थित थे। करीब 50,000 लोगों ने सिलीगुड़ी जंक्शन पर 7–10 फरवरी 2004 तक प्रदर्शनी देखी।

इसके बाद विज्ञान रेल 11 फरवरी 2004 को अलीपुरदुआर पहुंची। यहां रेल का उद्घाटन डीआरएम श्रीमती पंपा बब्बर ने किया। इस अवसर पर एडीआरएम, डीसीएम और एडीएम भी उपस्थित थे। स्थानीय विधानसभा सदस्य श्री सत्यब्रत दास भी समारोह में उपस्थित थे। लगभग 1,20,000 लोगों ने अलीपुरदुआर में विज्ञान रेल को देखा।

विज्ञान रेल का पूर्वोत्तर में अगला पड़ाव गुवाहाटी में 15 फरवरी 2004 को था। गुवाहाटी विश्व विद्यालय के उपकुलपति प्रो. जी. तालुकदार, श्री एम. सी. चौहान, एडीआरएम, श्री अफ्सर हज़ारिका, डीसी (कामरूप मेट्रो) उद्घाटन समारोह में उपस्थित थे। डॉ. विनय बी. काम्बले, निदेशक, विज्ञान प्रसार ने अतिथियों का स्वागत किया और इस प्रतिष्ठित परियोजना के बारे में संक्षेप में बताया। इसके बाद सभी अतिथियों ने संक्षिप्त भाषण दिए। हर दिन लगभग चार हजार लोगों ने प्रदर्शनी को देखा। विज्ञान रेल का अगला पड़ाव नागालैंड के दीमापुर में था जहां ये 21 फरवरी से 23 फरवरी 2004 तक रुकी। वहां इस प्रदर्शनी का उद्घाटन नागालैंड के उच्च एवं तकनीकी शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री श्री देव नुखू, श्री ज्योति कलश, डीसी दीमापुर, श्री जनार्दन कुमार, एसपी, दीमापुर और डॉ. जेवी हिसे, एसएसओ, डीएसटी नागालैंड ने किया। तीन दिनों के इस पड़ाव में करीब 30,000 लोगों ने प्रदर्शनी को देखा।

उत्तरपूर्व में विज्ञान रेल का आखिरी पड़ाव तिनसुकिया में था। जहां वह 24 से 26 फरवरी 2004 तक रुकी। प्रदर्शनी का उद्घाटन एडीआरएम (रेलवे) श्री अशोक कुमार और श्री संजीव मंडेकर ने किया। वहां करीब 50,000 लोगों ने 26 फरवरी 2004 तक विज्ञान रेल को देखा। स्थानीय समाचार पत्रों, आकाशवाणी, दूरदर्शन और अन्य प्राइवेट टीवी चेनलों ने विज्ञान रेल को व्यापक रूप से कवरेज दी।

‘शुक्र पारगमन एक्टीविटी किट’ और ‘इंडिया इन स्पेस सीडी रॉम’, बिक्री के लिए। प्रत्येक केवल रुपए : पचास में उपलब्ध हैं। आप अपने आदेश निम्न पते पर लिखकर भेज सकते हैं :

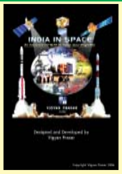

निदेशक, विज्ञान प्रसार
सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली 110 016
दूरभाष : 26864157, 26864022; ई–मेल : vigyanprasar@hub.nic.in

विश्व पुस्तक मेला 2004

विज्ञान प्रसार ने 16वें विश्व पुस्तक मेला, नई दिल्ली, में 14 से 22 फरवरी 2004 तक, भाग लिया।

‘ट्रान्ज़िट ऑफ वीनस’ किट और ‘इंडिया इन स्पेस’ सीडी का विमोचन

विज्ञान प्रसार द्वारा प्रकाशित ‘इंडिया इन स्पेस’ नामक एक अंत:क्रियात्मक सीडी और ‘ट्रान्ज़िट ऑफ वीनस’ किट का विमोचन प्रधान मंत्री के पूर्व वैज्ञानिक सलाहकार प्रो. गोवारीकर द्वारा राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के अवसर पर 27 फरवरी 2004 को किया गया।